सदाचार संदेश

संरक्षक :

ब्रह्मलीन महात्मा श्री भवानीशंकर जी महाराज

सदाचार संदेश

भवानी शङ्करौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।
याभ्याँ विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम् ॥

सत् गुरु - वन्दना

वर्णानामथ संघानां रसानां छन्द सामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

विषयानुक्रम

	पृष्ठ	
सदाचार	१	परमसन्त श्री भवानीशंकर जी महाराज
सद् गुरु महिमा	७	सन्त शिरोमणि महात्मा कबीरदास जी
ब्रह्मलीन महात्मा श्री चच्चा जी महाराज	८	डॉ० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव
गुरु के उपकार	१२	बाबू काशीप्रसाद जी
जड़ता का नाश	१३	सन्त वाणी
भगवान कहाँ रहते हैं ?	१५	गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज
मेरे गुरुदेव	१७	बाबू श्री काशीप्रसाद जी
श्री गुरु-पद-रज महिमा	२९	प्रो० रामस्वरूप खरे
एक सत्संगी की दैनन्दिनी से	३०	बाबू श्री शीतलप्रसाद जी
भव्य आरती	३३	श्री बालकृष्ण शर्मा 'विकास'
सदाचार सन्देश	३४	श्री यमुनेश मधुपुरी
सदगुरु-स्तवन	३५	प्रो० रामस्वरूप खरे
विचार-कण	३६	सुकवि श्री 'आदर्श' प्रहरी

सम्पादकीय

प्रातः स्मरणीय परम पूज्य चच्चा जी महाराज वास्तव में राजर्षि जनक की भाँति 'विदेह' थे। संसार में रहते हुए संसार से अनासक्त। निष्काम कर्म की उपासना उनके जीवन का लक्ष्य था। मानवता की सेवा को ही वे सच्ची ईश्वर पूजा मानते थे। वे अपने युग के विशाल प्रकाश स्तंभ थे जिसके आलोक में न जाने कितने पथ भ्रष्ट साधकों को सम्यक दिशा-बोध मिला। उनके सहज मार्ग पर हर प्राणी चल सकता था—चाहे वह किसी धर्म, संप्रदाय अथवा मजहब का मानने वाला क्यों न हो। उनका पन्थ सबका पन्थ था। उसमें सबके अभ्युदय की बात थी। यही कारण है कि उनकी पूजा में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, हरिजन, वैष्णव, शाक्त, आस्तिक, नास्तिक, राजपुरुष, नेता, मंत्री, अधिकारी एवं छोटे-छोटे कर्मचारी भी समान रूप में सम्मिलित होकर—विश्व की कल्याण कामना करते हुये सदाचरण के मार्ग पर चलने के इच्छुक रहा करते थे।

'सदाचार संदेश' घर-घर पहुंचे जिससे समूची मानव-जाति का हित संभव हो सके, यही हम सबका अभीष्ट है।

राष्ट्र का अभ्युदय सदाचार पर निर्भर है।

हे ईश्वर ! तू ऐसी सुमति एवं सद्बुद्धि दे जिससे हम सब सदाचार के मार्ग पर निर्भीक होकर चल सकें।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चित् दुखभाग्यवेत् ॥

सदाचार सन्देश : उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य–

- श्री चच्चा जी महाराज के उपदेशों के अनुसार घर–घर में सदाचार एवं ईश्वर-भक्ति का प्रचार करना ।
- सहयोग, सदभाव और प्रेम के आधार पर समाज का पुनर्गठन करना एवं आपस में बन्धुत्व की भावना का प्रसार करना ।
- युवा–वर्ग को माता–पिता, वृद्धों और गुरुजनों की पूजा तथा सेवा करने की साधना के साथ ही श्री भगवान की पूजा सीखने के लिये प्रोत्साहित करना ।
- मानव जीवन के इस उद्देश्य का प्रचार–प्रसार करना कि निष्काम प्रेम–भाव से बिना किसी भेद–भाव व पक्षपात के प्रत्येक प्राणी की सेवा करना–साक्षात् ईश्वर की सेवा करना है ।

नियम–

- 'सदाचार संदेश' प्रकाशित होने वाले मास की १५ तारीख के लगभग प्रकाशित होगा । वर्ष चैत्र मास (श्री रामनवमी) से प्रारम्भ होगा ।
- 'सदाचार संदेश' का वार्षिक मूल्य ६–०० तथा एक प्रति का मूल्य १.५० होगा । ग्राहक किसी भी समय से बन सकते हैं । ग्राहक बनने पर वर्ष के पिछले सभी अंक भेज दिये जायेंगे ।
- 'सदाचार संदेश' में ईश्वर भक्ति, चरित्र, आध्यात्मिक, सामाजिक, स्वास्थ्य व सदाचार सम्बन्धी कवितायें तथा लेख छापे जायेंगे । लेखों के घटाने बढ़ाने तथा छापने अथवा न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा । परन्तु लेखों में प्रकाशित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी न होगा । लेख साफ-साफ कागज के एक ही ओर अच्छी स्याही से लिखे होना चाहिए ।
- 'सदाचार संदेश' में किसी भी प्रकार का विज्ञापन प्रकाशित नहीं किया जायेगा । सज्जन इसे भेजने का कष्ट न करें ।
- 'सदाचार संदेश' का वार्षिक शुल्क, सम्पादन तथा व्यवस्था सम्बन्धी सारा पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जावे–
सम्पादक 'सदाचार संदेश' १०८, नया रामनगर, उरई (उ. प्र.)

सदाचार

☐ **परम सन्त श्री भवानीशङ्कर जी महाराज**

सद + आचार = सदाचार (धर्मानुसार सत्य और प्रिय व्यवहार जो प्रत्येक प्राणी को सदैव लाभकारी हो) ।

जिससे सबकी धारणा होती है, वही धर्म है । धर्म से ही सब प्राणी बँधे हैं । धर्म के त्याग देने से समाज की वही दशा होती है जो अगाध जल में बिना मल्लाह के नाव की होती है ।

जिन कामों से जीव को आनन्द और सुख हो वह सदाचार है और जिन कामों से जीव को दुख और शोक हो वह दुराचार है जैसा कि किसी महापुरुष ने नीचे के श्लोक में कहा है–

**अष्टादस पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम् ।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम् ॥**

अर्थात् अठारह पुराणों में श्री व्यास जी के मुख्य दो बचन हैं–(१) दूसरे का उपकार करना यह धर्म है । (२) और दूसरे को दुख देना पाप है ।

यथा रामायण वचनं

पर उपकार बचन मन काया । संत सुभाव सहज खगराया ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असन्त अभागी ॥
भूरज–तरु–सम संत कृपाला । परहित नित सह विपति विसाला ॥
सन इव खल चर बंधन करई । खाल कढ़ाय विपति सह मरई ॥
खल बिन स्वारथ पर अपकारी । अहि मूषक इव सुन उरगारी ॥
पर संपदा विनासि नसाहीं । जिमि ससि हत हिम उपल बिलाहीं ॥
दुष्ट हृदय जग आरत हेतू । यथा प्रसिद्ध अधम गृह केतू ॥
संत उदय संतत सुखकारी । विस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥
परम धरम श्रुति विदित अहिंसा । पर निन्दा सम अघ न गिरीसा ॥

(१) सन्त स्वभाव से ही मनसा, वाचा कर्मणा दूसरों की भलाई करते रहते हैं।

(२) और दूसरों की भलाई करने में स्वतः दुख सहते हैं परन्तु अभागी और दुर्जन लोग दूसरों को दुख देने के लिये आप ही दुख भोगते हैं।

(३) दयालु सन्त भोज-वृक्ष के समान दूसरों के हित के लिये अपनी खाल उधड़वाकर अपने पत्तों को मनुष्यों के लिखने के हेतु काम में लिवाते हैं।

(४) दुष्ट जन सन के समान दूसरों को बंधन में डालते हैं सो अपनी ही खाल खिंचवाकर दुख सहते हैं और मर जाते हैं।

(५) हे गरुड़ जी सुनो दुष्ट जन तो विना ही अपने स्वार्थ के दूसरों की हानि करते रहते हैं जैसे सर्प और चूहे। जैसा कहा गया है:-

भले पुरुष पर काज को, दुख सह लेत अनेक।
ढकें तूल दुख पाय बहु, पर तन सहित विवेक॥
मरें अधम खोटे पुरुष, पर अकाज को धाय।
जिमि माखी घृत पात्र को, तनु तजि तुरत नसाय॥

(६) ये लोग दूसरों की सम्पत्ति को नाश करके आप भी मिट जाते हैं जिस प्रकार ओले खेती का नाश कर आप भी घुल जाते हैं।

(७) दुर्जनों का हृदय लोगों को दुख देने के लिये है जैसे कि 'केतु' नाम का ग्रह नीच होने में प्रसिद्ध है। जिसके उदय होते ही संसार को कष्ट होता है।

(८) सज्जनों का जीवन तो सदा सुख का देने वाला है और उससे संसार के सब प्राणियों को सुख मिलता है। जैसे सूर्य और चन्द्रमा कि जिनसे सारे संसार को प्रकाश मिलता है। (भाव यह कि चन्द्रमा के उदय से रात्रि में उजेला, शीतलता तथा वनस्पतियों की वृद्धि होती है। और सूर्य के उदय से दिन का होना, जीवधारियों को गर्मी और प्रकाश, पानी आदि का बरसना होता है।) इसी तरह संत तथा सदाचारी पुरुषों के द्वारा विश्व के सब प्राणियों की नाना प्रकार की सेवा होती है।

(९) वेद के अनुसार सबसे बड़ा धर्म तो जीवों को दुख न देना अथवा उनके प्राण न लेना है।' और दूसरों की कुबड़ाई (निंदा चुगली) करना इसके समान कोई भारी पाप नहीं है। जिस एक व्यक्ति के दुराचरणों से समाज की शांति डाँवाडोल हो,

वह महापातकी है। ऐसे असदाचारी मनुष्य पृथ्वी पर जो दुर्भिक्ष, रोग, शोक, भय आदि दुर्घटनायें हुआ करती हैं, वे ऐसे ही अत्याचारी मनुष्यों के पापों के फल हैं।

अब विचार यह उठता है कि ऐसे महापातकी और मनुष्यों का अंधकार दूर होकर वह पुण्यात्मा तथा सदाचारी कैसे बने? उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर के लिये समझ में यह बात आती है कि उनके अज्ञान के नाश के लिये सत संगति भगवान की कथा अचूक दवा है।

यथा रामायण वचनं

मज्जन फल पेखिअ तत्काला। काक होहिं पिक बकहु मराला॥
सुनि आचरज करहि जन कोई। सत-संगति महिमा नहि गोई॥
बालमीकि नारद घट जोनी। निज-निज मुखन कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहां जेहि पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुं वेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग विवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सत संगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥
सठ सुधरहिं सत संगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई॥
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥
बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु राम पद, होय न दृढ़ अनुराग॥

संसार में जितने प्राणी मात्र हैं, चाहे वे निर्धन हों या धनवान सब सुख और आनन्द की इच्छा रखते हैं। मायावी वस्तुओं में सुख और आनन्द नहीं है। अगर यह मिल भी जावें तो इनसे कोई सदैव के लिये सुख और आनन्द में नहीं रहता। सच्चा सुख सत्य वस्तु की प्राप्ति में ही है और इस असार संसार में सिवाय ईश्वर के सब असत्य है। इसलिए ईश्वर की प्राप्ति ही के लिये पुरुषार्थ करना चाहिये ताकि सच्चा सुख और आनन्द मिले। ईश्वर की प्राप्ति पाप मिटने पर होती है और पाप भगवान की कथा सुनने और समझने से नाश होते हैं। श्री भगवान की कथा समझने के लिये सतसंग की बहुत आवश्यकता है। क्योंकि सतसंग में कथा का निरूपण होता है। केवल धार्मिक ग्रन्थों के अवलोकन से श्री भगवान की कथा मनुष्य पढ़ तो लेते हैं पर, उसे भली भांति समझ नहीं पाते। अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा समझ में आता है, उसी के अनुसार अभ्यास, साधन तथा आचरण करने लगते हैं जिससे लाभ न होकर प्रायः हानि

उठानी पड़ती है और उसका असर विश्वास व श्रद्धा पर पड़ता है ।

यथा रामायण वचनं

श्रोता वक्ता ज्ञान निधि, कथा राम की गूढ़ ।
किमि समुझै यह जीव जड़, कलिमल ग्रसित बिमूढ़ ।।

धार्मिक ग्रन्थों का श्रवण सतसंग में यथार्थ लाभकारी होता है क्योंकि उसमें बहुत सी गूढ़ बातें ऐसी होती हैं कि जिनको अनुभवी महापुरुष तथा संत और महात्मा ही श्रोता की योग्यतानुसार अपने अनुभव से ठीके-ठीक समझाकर अपनी आत्म शक्ति द्वारा उनके हृदय में अंकित कर सकते हैं । आत्मोन्नति अथवा ईश्वर भक्ति का श्रीगणेश (प्रारम्भ) सतसंग से ही होता है कि जिसके प्रभाव से महापात की जीव भी परम पद को प्राप्त करके अपने सहज रूप को पाता है ।

यथा रामायण वचनं

नवधा भगति कहौं तोहि पाही । सावधान सुन धर मन माँही ।।
प्रथम भगति संतन कर संगा । दूसर रति मम कथा प्रसंगा ।।
गुरु पद पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुण गन, करै कपट तजि गान ।।
मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा । पंचम भजन सो वेद प्रकासा ।।
षट दम सील विरत बहु कर्मा । निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ।।
सप्तम सब मोहिमय जग देखे । मोते सन्त अधिक कर लेखे ।।
अष्टम जथा लाभ सन्तोषा । सपनेहुँ नहिं देखे परदोषा ।।
नवम सरल सब सन छल हीना । मम भरोसि हिय हर्ष न दीना ।।
नव मँह एको जिनके होई । नार पुरुष सचराचरि कोई ।।
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ।।
योगि वृन्द दुर्लभ गति जोई । तो कहँ आज सुलभ भइ सोई ।।
मम दरसन कल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ।।

आजकल आत्मोन्नति अथवा ईश्वर भक्ति की अवनति के कारण सदाचार-हीन मनुष्य होते जाते हैं ।

ईश्वर से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी मजहब पंथ तथा मत हैं उनके मानने और न मानने वाले मनुष्यों की अधिक संख्या ने अपने-अपने धर्म के अनुसार कर्त्तव्य पालन करना छोड़ दिया है और आत्मोन्नति तथा ईश्वर भक्ति के साधन में बहुत कमी कर दी है कि जिससे आचार भ्रष्ट तथा दुराचारी व अत्याचारी मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ गई है और सदाचारी व परोपकारी मनुष्यों की संख्या इनी-गिनी (बहुत कम) रह गई ।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि सारे संसार में प्राणी बहुत दुखी हो रहे हैं । दुर्भिक्ष ने देश के कोने-कोने और घर-घर में वास कर लिया है । रोग, शोक, भय, चिन्ता, महामारी आदि दुर्घटनाओं का आक्रमण निरन्तर जारी रहता है । इस महा विश्व व्यापी अशांति और बैचेनी से बचने का उपाय सन्तों के मत के अनुसार केवल यही है कि प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने मजहब पंथ तथा मत के नियम के अनुसार धर्म की पाबन्दी करे और आत्मोन्नति अथवा ईश्वर की भक्ति की प्रीति के लिये नियमानुसार तथा निश्चित समय पर प्रति दिन अपना अभ्यास करता रहे ताकि देश सेवा के लिए निःस्वार्थी और सदाचारी पुरुष तैयार होते रहें और उनके द्वारा मनुष्यों के कष्ट और दुख दूर होकर अशान्ति ओर बैचेनी का वायु मण्डल देश के कोने-कोने और घर-घर से दूर हो ।

प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपना अभ्यास तथा साधन जारी रखते हुए अपने घर के प्रत्येक प्राणी को ईश्वर भक्ति में लगाता रहे और ईश्वर भक्ति का विस्तार अपने कुटुम्ब जाति व सम्बन्धियों तथा मिलने जुलने वालों में फैलाने की तीव्र उत्कण्ठा रक्खे । ताकि देश के कोने-कोने और घर-घर में स्वार्थ त्यागी और सदाचारी मनुष्य बनें । आत्मोन्नति अथवा ईश्वर भक्ति ऐसी अमूल्य वस्तु है जिसके प्राप्त होने पर मनुष्य सदाचारी बन जाता है । सदाचारी का गुण यह है कि उसका हृदय प्रेम से पिघला हुआ होता है । उसके नेत्र दूसरों की विपत्ति या आवश्यकताओं की अपूर्ति देख नहीं सकते । कान किसी की विपत्ति-कहानी सुन नहीं सकते । उसकी नासिका स्वार्थ की दुर्गन्धि को सूँघने में असमर्थ है । जिह्वा उस समय खाना-पीना छोड़ देती है । वह अपना सर्वस्व निछावर करके दुखी प्राणी के दुख का निवारण का उपाय करने लगता है । दुखी हृदयों का दुख दूर करने के लिए ही वह जीता है ।

सदाचारी मनुष्य सहनशील और उदार होता है । कुछ वासनायें उसके पास फटकने नहीं पाती । उसे अपने कुटुम्ब जात और समाज की ही भलाई की चिन्ता नहीं रहती बल्कि उसे सारे विश्व के प्राणियों की चिन्ता रहती है । वह निष्काम प्रेम भाव से बिना किसी भेद-भाव व पक्षपात के प्रत्येक प्राणी की तन-मन-धन से निःस्वार्थ सेवा करता है और ऐसी सेवा को परमात्मा की साक्षात साकार सेवा समझता है । विश्व में सुख और शांति के लिए ऐसे ही सदाचारी मनुष्यों की आवश्यकता है ।

इस संसार में जितने मनुष्यों से इस विश्व के प्राणियों का भला हुआ है वह सब सदाचारी, स्वार्थ त्यागी और सेवा परायण सत्पुरुष थे । पुराणों तथा इतिहास में उनकी उज्ज्वल कीर्ति स्वर्णाक्षरों में आज तक लिखी हुई है और उनकी कीर्ति लता आज भी सुन्दर हरी-भरी बनी हुई है । उनके आदर्श सतकर्मों को देखकर और सुनकर और भी मनुष्य उनके सदाचार का अनुकरण कर रहे हैं ।

सदाचार द्वारा ही मनुष्य उदारता और गौरव के साथ कुटुम्ब, जाति, समाज और विश्व की सेवा का अधिकारी होता है । सदाचार में मुख्य लक्षण यह है कि सत् तथा निःस्वार्थ सेवा के करने के साथ ही सदाचारी का चित्त आनन्द से सराबोर हो जाता है। सदाचार के इस मान सरोवर में एक गोता लगाते ही संसार की सारी व्यथायें और तीनों ताप एक दम नष्ट हो जाते हैं। आत्मा को शांति मिलती है। भव का ताप मिट जाता है। चित्त को विश्राम मिलता है और मन का मैल घुल जाता है। सदाचारी मनुष्य इस भू-मण्डल में निर्भयता के साथ विश्व की सेवा करते हुए अपनी माता की कोख की पवित्रता का परिचय देता है और सुख व आनन्द भोगता हुआ अन्त में परम पद को प्राप्त होता है। वह मरने के बाद भी कीर्ति रूप से संसार में जीवित रहता है।

वर्तमान युग में महात्मा दादा भाई नौरोजी, महात्मा गोखले, महात्मा लाजपत राय, महात्मा बाल गंगाधर तिलक, त्याग मूर्ति महात्मा मोतीलाल नेहरू, महात्मा मदनमोहन मालवीय महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी तथा अन्य महापुरुष और उनके आदर्श बीर माताओं तथा बहिनों ने इस विश्व व्यापी युद्ध में देश के कल्याण के लिए घर, कुटुम्ब, सम्बन्धी-जाति-पाँति इत्यादि का बन्धन तोड़ताड़ कर दारुण जेल-यातनायें तथा अति कठिन दण्ड और कष्ट सहते-सहते अपने सदाचार द्वारा महा विजय प्राप्त करके देश को पूर्ण स्वतन्त्र कराया और स्वराज्य की स्थापना की।

यह सब महापुरुष तथा वीर मातायें और बहिनें सदाचार और वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थीं। जिन्होंने गौरवता के साथ हर प्रकार का कष्ट सहन करते-करते विश्व सेवा में ही अपनी जीवन लीला समाप्त की।

वे देश सेवा तथा सदाचार की कीर्ति से इस संसार में अब भी जीवित हैं और उनका नाम सदैव अमर रहेगा।

इस समय भारत बर्ष के राज्य की सत्ता की बागडोर महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधी के आध्यात्मिक शिष्य और सदाचार की मूर्ति महात्मा जवाहरलाल नेहरू के हाथ में है। नेहरू जी का सदाचार, शूरता, वीरता सत्यता तथा शारीरिक, आत्मिक सामाजिक बल और विश्व सेवा सारे संसार के कोने-कोने में विदिर है और उनके गुण घर-घर गाये जाते हैं। सदाचार से जितना इनके जीवन का मूल्य बढ़ गया है उससे कहीं अधिक इनके शरीर का मूल्य बढ़ गया है। सदाचार के मेल से इनके शरीर का मूल्य इतना अधिक हो गया है कि इनके आगे सारे संसार का वैभव तिनके के समान तुच्छ है।

यथा रामायण वचनं

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत ।
श्री रघुवीर परायण, जेहि नर उपज विनीत ॥

सद गुरु - महिमा

☐ सन्त शिरोमणि महात्मा कबीरदास जी

सतगुरु सवाँ न को सगा, सोधी सई न दाति ।
हरि जी सवाँ न को हितू, हरि जन सई न जाति ॥

सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघाड़ियाँ, अनत दिखावणहार ॥

सतगुरु के सदके करूँ, दिल अपणी का साछ ।
कलियुग हम स्यूँ लड़ि पड़्या, मुहकम मेरा वाछ ॥

सतगुरु लई कमांण कर, बाँहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सूँ, भीतर रह्या सरीर ॥

सतगुरु साँचा सूरिवाँ, सबद जु बाह्या एक ।
लागत ही मिल गया, पड़्या कलेजे छेक ॥

सतगुरु मारया वाण भरि, धरि करि सूधी मूठि।
अंग उघाड़े लागिया, गई दवा सूँ फूटि ॥

सतगुरु साँचा सूरिवाँ तातें लोह लुहार ।
कसणी दे कंचन किया ताइ लिया तत्सार ॥

सतगुरु हमसूँ रीझि कर, एकै कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम को, भीजि गया सब अंग ॥

सतगुरु ऐसा चाहिये, जस सिकलीगर होइ ।
सबद मसकला फेरि कर, देह द्रपन करै सोइ ॥

ब्रह्मलीन महात्मा श्री चच्चा जी महाराज

□ डॉ० श्री ब्रजवासी लाल जी, उरई

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जहाँ अपनी गौरवमयी वीर प्रसू भूमि की परम्परा के लिए विख्यात रहा है वहाँ यह स्थली तपोभूमि एवं साधना क्षेत्र के रूप में भी विश्रुत एवं अग्रगन्य रही है। उद्दालक ऋषि की तपोभूमि उरई को परम संत महात्मा श्री भवानी–शंकर जी की देन आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास की एक नई कड़ी है। आप 'चच्चा जी' के नाम से प्रसिद्ध थे। और साधना के लोक मंगलकारी दृष्टिकोण के कारण जन–जन के आराध्य बन गये थे। उनके सत्संगी तो उनको अपना सर्वस्व समझते ही थे, किन्तु जन साधारण भी दीनदयाल तथा करुणा निधान स्वरूप का दर्शन उनके पावन व्यक्तित्व में करता था। वह प्रत्येक व्यक्ति की परेशानी और कठिनाई में आगे आते और समुचित समाधान प्रस्तुत कर देते थे।

उनके नाम से सत्संग आश्रम चन्द्र नगर में स्थित है। गृहस्थ जीवन में ही ब्रह्म विद्या तथा आध्यात्मिक सत्संग का लाभ इस आश्रम की अपनी विशेषता है। इस प्रकार की सुलभ एवं सहज साधना के कारण ही चच्चा जी महाराज साधना जगत में अग्रगन्य एवं विश्रुत हुए। वेदान्त की भाव–भूमि में प्रति फलित संत–मत को उन्होंने नई दिशा देकर एक ऐसे दिव्य मार्ग की स्थापना की जिसके प्रकाश में गृहस्थी का दायित्व निर्वाह करते हुए मनुष्य आत्म स्वरूप की प्राप्ति कर सकता है। यही नहीं इस साधना के फलस्वरूप गृहस्थ–आश्रम का दायित्व निर्वाह और भी सुन्दर बन पड़ता है और कर्म ही पूजा बन जाती है। यही कारण है कि उनकी प्रेरणा से अनेक 'मूड़ मुड़ाय भये सन्यासी' पुनः गृहस्थ आश्रम में वापिस आए और चाचा जी महाराज के महान व्यक्तित्व में सदगुरु, शुभेच्छु एवं पथ प्रदर्शक प्राप्त कर धन्य हुए।

ब्रह्मलीन परम संत चच्चा जी महाराज सच्चे अर्थों में संत और पर–दुखकातर परम आत्मा थे। दूसरे के कष्टों को दूर करने के लिए वह तन, मन, धन से सेवा करने के लिए उत्सुक एवं तत्पर ही नहीं रहते थे, प्रत्युत अति विवश आर्त्तजनों के शारीरिक कष्टों को स्वयं भोगने के लिए भी आगे आ जाते है। दूसरों के भोगों को स्वयं भोगना उनकी मानोवृत्ति बन गई थी। फलस्वरूप वह किसी न किसी का भोग आमंत्रित एवं आहूत करते तथा भोगते दिखलायी दिया करते थे। यही कारण है कि उनका

प्रत्येक व्यक्ति से, जो उनके सम्पर्क में आता था, चाहे वह सत्संगी हो अथवा न हो, आन्तरिक एवं आत्मिक निकट सम्बन्ध हो जाता था। जाति–पाँति और धर्म संप्रदाय के भेद भाव और ऊँच–नीच से ऊपर उठकर उन्होंने जन–जन को वह असीम प्यार दिया कि जो परिवार में माता–पिता से भी सुलभ नहीं हो पाता। यही कारण है कि उनके यह लीला समाप्त करने पर शोक का सागर ही उमड़ पड़ा था और ऐसा लगता था मानो विश्व आत्मा ही विकल एवं विह्वल हो गयी हो।

चच्चा जी महाराज के पूर्वज बिठूर के निवासी थे। बिठूर की पावन भूमि के आध्यात्मिक संस्कार उनकी पारिवारिक धरोहर थी जो उनके साधना क्षेत्र की आधार शिला बनी। अपने धर्म परायण पूज्य पिता जी श्री रामदयाल जी की तपस्या उनकी साधना को अकुरित करने में सहायक हुई तथा उनका जिज्ञासु मन उसको प्रस्फुटित और विकसित करने में सफल हुआ।

आज से लगभग ९३ वर्ष पूर्व जालौन की ऐतिहासिक भूमि में उन्होंने जन्म लिया। उनके पिता जी तीन भाई थे। यह यों एक संभ्रान्त जमीदार परिवार था किन्तु राजकीय सेवा में अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय के लिए भी यह परिवार प्रसिद्ध रहा। स्वयं चच्चा जी महाराज भी अपनी उच्च शिक्षा के पश्चात् राजकीय सेवा में अपने परिश्रम एवं अध्यवसाय के लिए भी यह परिवार प्रसिद्ध रहा। स्वयं चच्चा जी महाराज भी अपनी उच्च शिक्षा के पश्चात् राजकीय सेवा में आये। जजेज कोर्ट में उन्होंने बीस वर्ष तक कार्य किया। वह अमीन, मुन्सरिम, सब रजिस्ट्रार, नाजिर तथा सेण्ट्रल नाजिर जैसे उत्तर दायित्व पूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। उनके कार्य व्यवहार का अपना आदर्श था। अपनी सम्पूर्ण सेवावधि में उन्होंने किसी से कभी एक पैसा रिश्वत का स्वीकार नहीं किया यद्यपि जिन पदों पर उन्होंने कार्य किया वे सभी रिश्वत मिलने के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने अपने वेतन की राशि में ही सन्तोष किया तथा रूखे-सूखे जीवन-यापन स्वीकार किया। दौलत से मुँह मोड़कर फकीरी अंगीकार की। सेवा निवृत्त होकर उन्होंने उरई को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया।

चच्चा जी महाराज गृहस्थ सन्त थे। उनके भरा-पूरा परिवार है जो अपने आदर्श के लिये उल्लेखनीय है। उनके चार पुत्र, चार पौत्र सात पौत्रियाँ हैं।

अपने जीवन के प्रारम्भ से ही जिज्ञासु श्री भवानीशङ्कर जी परमतत्व की खोज में लगे हुये थे। घण्टों पूजा-पाठ तथा रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों का परायण एवं पाठ उनकी दिन चर्य्या का नियमित अंग था। परमतत्व की खोज में वह साधु-महात्माओं की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये उत्सुक रहे और पहाड़ों की गिरि-कन्दराओं तक उनके लिये मारे-मारे फिरे। उनकी साध्वी एवं पति-परायण धर्मपत्नी ने उनके उद्देश्य की प्राप्ति में उनका पूरा-पूरा साथ एवं सहयोग दिया। वह भी उनके साथ त्याग-तपस्या की मूर्ति थी। जीवन में एक ऐसा भी दिन आया जब इस साधक दम्पति

ने साधु होने का संकल्प किया और राजकीय सेवा तथा घरबार छोड़कर गिरि-कन्दराओं की शरण ली। घोर तपश्चर्या की निराशा में उन्हें किसी सन्त के दर्शन हुये। उन्होंने इन्हें समझाया कि साधु-महात्माओं के बीच किसी सच्चे सन्त के मिलने की सम्भावना नहीं है। इन्हें वापिस गृहस्थाश्रम में ही किसी गृहस्थ सन्त की खोज करनी चाहिए। वहीं इनके उद्देश्य की पूर्ति होगी, सदगुरु के दर्शन होंगे जो तत्वदर्शी महात्मा इनका ही उद्धार न करेंगे प्रत्युत इनको जगत-उद्धारक ही बना देंगे। हुआ भी कुछ ऐसा ही। परमसन्त महात्मा लालाजी महाराज श्री रामचन्द्र जी से इन्हें ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई जो स्वयं एक सदगृहस्थ थे तथा राजकीय सेवा में फतेहगढ़ में आजीविका-रत थे।

चच्चा जी महाराज ने आदर्श एवं अनुकरणीय रूप में गृहस्थजीवन की परम्पराओं का निर्वाह किया। उन्होंने साधना के साथ सामाजिक और शैक्षणिक-क्षेत्रों में भी अपना आदर्श उपस्थित किया। सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों में साम्प्रदायिक वैषम्य एवं कटुता को उन्होंने सदा बुरा समझा किन्तु किसी की भर्त्सना न करके आपसी मेल-मिलाप को बढ़ावा देकर इस समस्या का सुन्दर ढंग से समाधान किया।

उनके सत्संग में सभी सम्प्रदायों के व्यक्ति आते थे और इस प्रकार सौहार्द्र की भाव-भूमि में एक नये युग की नींव पड़ी। उनकी सेवावधि में कई अंग्रेज जज भी उनसे बड़े प्रभावित हुए थे तथा उनके सत्संग के इच्छुक रहे थे। देश के दूर–दूर के स्थानों से जिज्ञासु आते हैं जो विभिन्न सामाजिक स्तर के ही नहीं होते प्रत्युत् विभिन्न रीति–रिवाजों और सम्प्रदायों के मानने वाले भी होते हैं किन्तु यहाँ आकर सब एक भाई चारे में बँध जाते हैं।

गुरु पूर्णिमा के पर्व को उन्होंने एक क्रांतिकारी मोड़ दिया है। इस पुण्य दिवस पर गुरु के स्थान पर, इस भावना के साथ कि शिष्य गुरु बने और दिव्य शक्ति प्राप्त करे, शिष्य की पूजा की जाती है। सत्संगी ही नहीं, जो भी महानुभाव उस दिन आश्रम में उपस्थित होते है, भाव और प्रेम सहित उनकी पूजा कर–उनके चरण स्पर्श किये जाते हैं। इस असाधारण परिवर्तन से गुरु–परम्परा में गुरुडम आ जाने की आशंका निःशेष हो जाती है। दशहरा पर्व पर पूर्वजों एवं पुरखों की आत्म–शाँति का अनुपम कार्यक्रम होता है तथा जोव मात्र के उद्धार की प्रार्थना की जाती है। दैनिक सत्संग के पश्चात प्रार्थना की जाती है कि छोटे–बड़े सभी नेताओं अधिकारियों और कर्मचारियों को सुमति एवं सुबुद्धि प्राप्त हो तथा घर-घर में शाँति का वास हो।

फरवरी १९४९ से तीन–चार वर्ष तक उन्होंने 'सदाचार' नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का सम्पादन किया तथा सदाचार के प्रति जन-मानस को बिशेष रूप से आकर्षित किया। इसी प्रयास में उनकी प्रकाशित रचनायें हैं—'नर हरि उपदेश'

'गृहचर्या में नर नारी सहयोग' इसके साथ ही साथ प्रभूत मात्रा में उनका अन्य साहित्य भी उपलब्ध है जिसके प्रकाशन एवं प्रसार-प्रचार की महती अपेक्षा है।

शैक्षिक-क्षेत्र में उनका अभूतपूर्व दाह उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक छात्रों को पढ़ने और अपने यहाँ रहने की व्यवस्था की। पढ़ाई के लिए सारा व्यय दिया तथा आगे उनकी आजीविका की चिन्ता भी की। इस प्रकार अनेकानेक मनुष्यों का जीवन बनाने का उनको श्रेय है। स्थानीय 'दयानन्द वैदिक महाविद्यालय' को उसकी विका–सोन्मुख योजनाओं को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने ५०–६० हजार के मूल्य की ३७ बीघा भूमि दान में देकर अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया है।

दिव्य ललाट, आभापूर्ण मुख-मण्डल विशाल, वक्षस्थल, आजानुबाहु तथा ऊँचा कद उनके व्यक्तित्व की गरिमा को प्रस्फुटित करते थे। इस पर उनकी सदा शान्त एवं सुहावनी मुद्रा तथा मन्द-मुसकान सहित आकर्षक तेजोमय छवि, अपने आराध्य के ध्यान में अनुरक्त गम्भीर वृत्ति और हर समय दूसरे की भावना का ध्यान तथा लोका–चार के प्रति आस्था उनके आराध्य दैवी स्वरूप में एक साथ राम की शक्ति, कृष्ण के मार्दव और ईसा की विरक्ति के दर्शन कराते थे। उनके पावन दर्शन के पश्चात् दूसरा कोई मन पर चढ़ता ही न था। अवतार शब्द की सारी परिकल्पना उनके सन्दर्भ में छोटी पड़ जाती थी। उनके दिव्य ध्यान में समाहित चित्त अनायास सदाचार के गुणों को प्राप्त करे और परमतत्व को उपलब्ध करे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अपना उद्धार करने वाले तो साधारणतया साधक बन ही जाते हैं किन्तु जो दूसरों का उद्धार करें और दूसरों को दिव्य-शक्ति प्राप्त कराने के लिए अपना सर्वस्व निछावर करें, ऐसे सन्त विरले ही होते हैं। चच्चाजी महाराज सभी क्षेत्रों में आदर्श पुरुष थे। उनके द्वारा प्रस्तुत मान्यतायें एवं मान-मूल्य सदा अनुकरणीय रहेंगे। इनके अनुकरण में ही जन–जीवन का कल्याण निहित है।

• •

"निःस्वार्थता से ही समाज, जाति, कुटुम्ब आदि जीवित और कायम रह सकते हैं। निःस्वार्थ सेवा करने के लिये सदाचार की बहुत आवश्यकता है जो विना ईश्वर-भजन के कदापि संभव नहीं।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

गुरु के उपकार

☐ बाबू काशीप्रसाद जी, लखनऊ (उ. प्र.)

गुरु तेरे कोटि–कोटि उपकार
नाथ तेरे कोटि–कोटि उपकार ।

लाखों मुख भी कर न सकेंगे, तेरा यश–उच्चार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

जनम–जनम के पापों को तू, क्षण में करता क्षार ।
उऋण कभी भी हो न सकेगा, यह सारा संसार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

ब्रह्मा विष्णु सदा शिव जैसे, कर न सके जो कार ।
तेरी कृपा-दृष्टि से क्षण में, अधम हुये भव–पार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

तेरी ज्योति सकल उर व्यापे, व्योम-भूमि-जलधार ।
ऐसा रूप दिखाओ प्रभुवर, होवे बेड़ा पार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

सकल विश्व है तेरे उर में, तेरे नैन हजार ।
तेरा खेल जगत है सारा, कभी न हुई तेरी हार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

ऐसी प्रीति भरो अब उरमें, हे गुरुवर भरतार ।
तन-मन-धन सब अर्पण करके, करें जीव-उद्धार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

हम भूले तेरी माया में, जो है सब निःसार ।
कृपा करो सब पर हे गुरुवर, समदर्शी-अवतार ॥
गुरु तेरे कोटि-कोटि उपकार । टेक ।

सन्तवाणी

जड़ता का नाश

पराधीनता-जनित-सुख-भोग से जड़ता पोषित होती है । यदि स्वाधीनता की माँग सबल तथा स्थायी हो जाय तो जड़ता स्वतः नाश हो जाती है । स्वाधीनता की माँग पूरी हो सकती है, यह अनन्त का मंगलमय विधान है । पराश्रय तथा परिश्रम के द्वारा पर-सेवा की जा सकती है । किन्तु पराश्रय और परिश्रम के द्वारा सुखभोग नहीं करना चाहिए । स्वाधीन जीवन के लिये पराश्रय एवं परिश्रम अपेक्षित नहीं है । स्वाश्रय तथा विश्राम से तो स्वाधीनता मिलती ही है परन्तु हरि–आश्रय तथा विश्राम से भी स्वा–धीनता मिलती है । समर्थ अर्थात विवेकी साधक स्वाश्रय तथा विश्राम से स्वाधीनता प्राप्त करते हैं और असमर्थ अर्थात् विश्वासी साधक हरि-आश्रय से भी स्वाधीनता प्राप्त करते हैं, कारण कि हरि सभी के अपने हैं और अपने में हैं अपने के आश्रित होना पराधीनता नहीं है । अतएव आस्था–श्रद्धा-विश्वास पूर्वक हरि–आश्रित होते ही जीवन की माँग पूरी हो जाती है । यह शरणागत साधकों का अनुभव है । शरणागत होने के लिये सभी के प्रति सद्भाव तथा यथाशक्ति सहयोग देना अत्यन्त आवश्यक है, कारण कि जो सभी के अपने हैं वे ही तो अपने हैं । सभी के प्रति आदर तथा प्यार होने से अपने को शरणागति प्राप्त होती है । शरणागत क्षमाशील होकर उदार होता है । तब परम उदार प्रभु उसे अपना लेते हैं । जिसे शरीर और संसार से अपने लिये कुछ नहीं चाहिये, वही शरणागत हो सकता है । जब तक साधक शरीर और संसार से कुछ भी आशा रखता है, तब तक हरि–आश्रित नहीं हो पाता । हरि–आश्रय उसी को प्राप्त होता है जिसकी दृष्टि में अपने लिये किसी और का अस्तित्व ही नहीं है । वह बड़ी सुगमता पूर्वक अकिंचन होकर अचाह हो जाता है । अचाह होते ही हरि–आश्रय स्वतः प्राप्त हो जाता है और फिर पराधीनता की गंध भी नहीं रहती । पराधीनता का अत्यन्त अभाव होते ही जड़ता स्वतः सदा के लिये नाश हो जाती है । जड़ता के कारण हृदय में जो कठोरता आ जाती है, उसका नाश पर–पीड़ा से पीड़ित होने पर ही होता है । पर–पीड़ा तब जागृत होती है जब शरीर की भाँति सभी को अपना माना जाय, कारण कि शरीर और विश्व का अविभाज्य सम्बन्ध है । विवेकी जन सभी की भाँति शरीर को अपने से भिन्न मानते हैं । उसका परिणाम यह होता है कि सेवा करने के लिये शरीर की भाँति सारी सृष्टि अपनी हो जाती है और अपने लिये सृष्टि में कुछ भी नहीं है । अपने को जो चाहिये सो अपने ही में विद्यमान है, इस वास्तविकता का बोध होने पर पराधीनता का नाश और स्वा-धीनता का नाश और स्वाधीनता की अभिव्यक्ति स्वतः हो जाती है ।

भूल–जनित काम और स्वभाव–जनित माँग का अनुभव प्रत्येक मानव को होता ही है। काम–जनित सुख मानव को जड़ता में आबद्ध कर अभाव से पीड़ित करता हैं। यह जीवन–विज्ञान है। अभाव की पीड़ा असहय होने पर स्वभाविक माँग सबल होती है और फिर अपने आप भूल–जनित काम का नाश हो जाता है जिसके होते ही साधक अपने में सन्तुष्टि होकर वास्तविक जीवन से अभिन्न हो जाता है। इसमें जड़ता की गन्ध भी नहीं रहती।

यद्यपि उदार तथा स्वाधीन होने की स्वाधीनता मानव-मात्र को प्राप्त है किन्तु जब मानव पर–सेवा न करके पराश्रय द्वारा सुख भोगने लगा तब इस प्रमाद से उदारता स्वार्थ भाव में बदल गई। जिसके बदलते ही साधक चेतना से विमुख होकर जड़ता में आबद्ध हो गया और फिर बेचारा सुख का भोगी घोर दुःख भोगने लगा। प्राकृतिक विधान के अनुसार सुख–भोग की रुचि को मिटाने के लिए ही स्वभाव से दुःख की उत्पत्ति होती है। यदि बेचारा दुखी दुःख के प्रभाव को अपनाकर सुख के प्रलोभन से रहित हो जाय तो बड़ी ही सुगमता पूर्वक स्वार्थभाव गल जाता है, और उदारता की अभिव्यक्ति होती है। उदारता आते ही जड़ता का नाश हो जाता हैं। फिर जीवन में सुख भोग की रुचि, क्षोभ तथा क्रोध की गंध भी नहीं रहती और फिर साधक चेतना को प्राप्त कर सदा–सदा के लिए जड़ता से रहित हो जाता है। जिस प्रकार प्रकाश के होते ही अन्धकार मिट जाता है, उसी प्रकार चेतना के उदय होते ही जड़ता मिट जाती है। सर्वांश में जड़ता तो कभी किसी मानव में नहीं होती। आँशिक चेतना सभी में रहती है। आँशिक चेतना का सदुपयोग करने पर जड़ता मिट जाती है परन्तु कभी–कभी साधक असावधानी के कारण साधना–जनित सुख का भोग करने लगता है। उसका भयंकर परिणाम यह होता है कि साधक की साध्य से दूरी बनी रहती है अर्थात् प्रेम और प्रेमास्पद के नित्य–बिहार से अभिन्नता नहीं होती। इस दृष्टि से साधक को साधना जनित सुख में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए, अपितु उत्तरोत्तर साध्य की अगाध प्रियता एवं उत्कट लालसा बढ़ती रहनी चाहिये। साध्य की प्रियता की भूख ही साधक का परम पुरुषार्थ है। सर्वांश में जड़ता का नाश होते ही साधक में अपने सुख की गंध भी नहीं रहती फिर साधक स्वतः साध्य के लिये उपयोगी हो जाता है। यह माँग वास्तविक माँग है। उदारता स्वाधीनता और प्रेम साधक का स्वरूप तथा साध्य की महिमा है इनके आश्रय से सीमित अहंभाव को जीवित रखना साधक का घोर प्रमाद है। उदारता स्वाधीनता और प्रेम के आश्रित अहम् को जीवित रखना भूल है। उदारता, स्वाधीनता और प्रेम रहे, पर उसके साथ अहम् न रहे। अहम् भूलकर अनन्त की महिमा से अभिन्न हो जाता है। उदारता, स्वाधीनता और प्रेम अनन्त की महिमा है और वही साधक का स्वरूप है। चर, यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है जब जड़ता का अत्यन्त अभाव हो जाता है उसके लिए हमें मिली हुई चेतना का आदरपूर्वक सदुपयोग करना अनिवार्य है, जो एकमात्र जीवन के सत्य को स्वीकार करने से ही संभव है।

भगवान कहाँ रहते हैं ?

☐ **रचयिता–गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज**

पूँछेहु मोहि कि रहौ कँह, मैं पूछत सकुचाउँ।
जँह न होहु तँह देहु कहि, तुम्हहि दिखावौं ठाउँ॥

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥
सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ ग्रह रूरे॥
लोचन चातक जिन्ह करि रुखे। रहहि दरस जलधर अभिलाखे॥
निदरहि सरित सिधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह के हृदय सदन सुख दायक। बसहु बंधु सह सिय रघुनायक॥

जस तुम्हार मानस विमल, हंसनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हियँ तासु॥

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुवासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि विनय विसेषी॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माँही॥
मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। विप्र जेवाँइ देहिं वहुं दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

सब करि मागहिं एक फलु, राम चरन रति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥

काम कोह मद मान न मोहा । लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह के कपट दंभ नहिं माया । तिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाँड़ि गत दूसर नाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माँहीं ॥
जननी सम जानहिं पर नारी । धनु पराव विष तें विष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पत्ति देखी । दुखित होहिं पर विपति विसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पियारे । तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात ।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सबके गुन गहहीं । विप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्हकइ जग लीका । घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहि जेही । तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥
जाति पाँति धन धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उरलाई । तेहि के हृदय रहहु रघुराई ॥
सरग नरकु अपबरगु समाना । जहँ तँह देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन लन सउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह ।
बसहु निरन्तर तासु मन, सो राउर निज गेह ॥

• •

"स्वार्थ-त्याग में एक बहुत बड़ी वीरता की आवश्यकता है जो कि बिना आत्म-बल के कदापि सम्भव नहीं। इसलिये श्री भगवान की उपासना का साधन प्रत्येक दिन समय पर अवश्य करते रहना चाहिए।

— सन्त श्री भवानीशंकर

मेरे गुरुदेव

☐ **बाबू श्री काशीप्रसाद जी लखनऊ (उ. प्र.)**

: ॐ :

सब धरती कागद करों, लेखनि करों बनराज ।
सात समुद्र की मसि करों, गुरु गुण लिखा न जाय ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वराः ।
गुरुर्साक्षात परब्रह्मा, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

हे परमपिता परमात्मा सत्गुरुदेव चच्चा जी आपकी महिमा अपरम्पार है। आपके चरित्र का वर्णन करने में विज्ञ भी मूढ़ हो जाते हैं, वाणी भी स्तब्ध हो जाती है तो मेरे जैसा तुच्छ पामर आपके चरित्रों का वर्णन कैसे कर सकता है ? फिर भी हे चच्चा जी ! आपका जो भी स्वरूप हो उसके चरण-रज की बन्दना करते हुए टूटी-फूटी वाणी में कुछ शब्द प्रकट करने का साहस कर रहा हूं। यह कार्य करने में कितना कठिन है इसका मनन न करते हुए मेरे मन ने अवश्य ढिठाई की है और नहीं तो सूर्य के सामने जुगनूँ की क्या बिसात है ? मुझ सरीखे अज्ञानी का इस कार्य में प्रवृत्त होना वैसा ही है जैसा किसी टिटहरी का अपनी चोंच की सहायता से समुद्र को नापने का प्रयास। बस एक ही आधार ऐसा है जिसकी सहायता से मैं यह साहस कर रहा हूं वह यह कि परम पूज्य चच्चा जी मेरे अनुकूल हैं। हे गुरुदेव यदि आपकी प्रेम पूर्ण वाणी किसी गूँगे पर भी कृपा करे तो वह भी बृहस्पति के साथ स्पर्धा कर सकता है। केवल यही नहीं, जिस किसी पर आपकी दृष्टि का प्रकाश पड़ जाता है अथवा आपका कोमल हाथ जिसके मस्तक पर जा पड़ता है वह जीव होने पर भी शिव की बराबरी कर सकता है। जिसके कार्यों का ऐसा महात्म्य है, उसका मैं मर्यादित वाणी के बल से भला कैसे वर्णन कर सकता हूं। क्या कभी कोई सूर्य के शरीर में उबटन लगा सकता है ? फूलों से भला कल्पबृक्ष का शृंगार किया जा सकता है ? ठीक इसी प्रकार श्री गुरुदेव चच्चा जी के महात्म्य का पूरा-पूरा आकलन करने की किसमें सामर्थ्य हो सकती है ? इसका वर्णन करना खरे-सोने पर चांदी का मुलम्मा करने के समान ही होगा। इसलिए कुछ भी न कहकर चुपचाप गुरुदेव के चरणों पर मस्तक रख

देना ही सबसे अच्छा है। वह स्वयं ही अपने चरित्र के वर्णन करने में समर्थ हैं। फिर भी आप सबको गुरुदेव के रूप में ही देखते हुए, आप सबकी आज्ञा गुरुदेव की आज्ञा समझते हुए कुछ विचार प्रकट कर रहा हूं। हालाकि मैं समझता हूं कि आप जैसे बुद्धजीवियों के सामने मेरा यह साहस सूर्य को दीपक दिखाने के समान ही होगा।

सन् १९४२ में मैं झांसी कलक्टरी में पेड ऐप्रेन्टिस के रूप में २१ रु० माहवार पर काम करता था। उस समय मेरे पूज्य पिता जी भी रिटायर हो गए थे। मेरे परिवार में मेरे पिताजी, माता जी, तीन बहनें, मैं स्वयं, मेरी पत्नी व एक पुत्री, मेरे बड़े भाई, भाभी जी व एक पुत्र तथा मेरा छोटा भाई थे। इस प्रकार १२ आदमियों का परिवार का भार मेरे ऊपर था। मैं आर्थिक व मानसिक चिन्ताओं के कारण व्यथित व दुखी रहता था। ऐसे समय में मेरे पूर्वजों की तपस्या तथा आशीर्वाद, जन्म-जन्मान्तरों के मेरे सत्कर्मों का फल, उस समय के मेरे इष्टदेव हनुमान जी की कृपा के फलस्वरूप मेरे जीवन में वह अमूल्य दिन आया कि पूज्य चच्चा जी ने इस तुच्छ दास को अपनाया था। उस समय पूज्य गुरुमाता भी साकार रूप में उपस्थित थी। उनके आशीर्वाद का मैं आखिरी पौदा हूं क्योंकि उसके तीन चार माह बाद ही वह चच्चा जी में लीन हो गई थीं। पूज्य चच्चा जी की शरण मुझे १९४३ में प्राप्त होने का सौभाग्य हुआ था। १९४३ से ३० जुलाई १९७३ तक साकार रूप में उनके दिव्य प्रकाश द्वारा मेरा मार्ग दर्शन होता रहा है। वह शुभ दिन ऐसा था जैसा कि चच्चा जी ने अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" में लिखा है कि कृपा चार प्रकार की होती है:-(१) निज कृपा, (२) ईश कृपा, (३) सन्त कृपा, (४) सत्गुरु कृपा। ये चारों कृपायें एकत्रित होकर मेरे जीवन को सार्थक बनाने में सहायक सिद्ध हुई। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ चच्चा जी के चरणों में प्राप्त हुए। जैसा कि कबीरदास जी ने लिखा है:-

तीरथ गए ते एक फल, सन्त मिले फल चार।
सत्गुरु मिले अनन्त फल, कहत कबीर विचार ॥

जिस पुरुष को इसी जन्म में सत्गुरु का पावन संग मिल गया और जिसे उनकी चरण-धूलि को मस्तक पर चढ़ाने और उनकी चरण-सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो गया उससे बढ़कर सुखी और शान्ति का अधिकारी कौन होगा ?

महान तपस्या व कठोर परिश्रम के फलस्वरूप ही सत्गुरु की प्राप्ति होती है। स्वयं चच्चा जी को गुरु की प्राप्ति के लिए कई महीनों तक बनों, जंगलों तथा पहाड़ों व तीर्थों में मारे-मारे फिरना पड़ा था। हम लोगों का सौभाग्य था कि विना किसी परिश्रम के ही हमें उनकी प्राप्ति हुई।

परम पूज्य चच्चा जी ने सत्गुरु की महानता व उनकी प्राप्ति के बारे में निम्नलिखित वाणी अपनी पुस्तक "गृह चर्या में नर नारी सहयोग में" में व्यक्त की है:-

(१) भवसागर से पार होने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता है। सद्गुरु के परामर्श और आध्यात्मिक प्रकाश द्वारा साधक अपने परम लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ होता है।

(२) बाहर के गुरु अनेक विषयों पर उपदेश देते हैं परन्तु सद्गुरु अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

(३) बाहर के गुरुओं का ज्ञान बाहरी वस्तुओं तक सीमित रहता है। उनके उपदेश से शंका उत्पन्न होने पर यथार्थ समाधान होना सम्भव नहीं है।

(४) सद्गुरु का वास हमारे अन्तःकरण में सगुण रूप से विराजमान रहता है। उनके प्रकाश से काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी अन्धकार उसी तरह से अन्तःकरण से भाग जाते हैं जैसे दिन के प्रकाश में चमगादड़ व उल्लू भाग जाते हैं।

(५) जिज्ञासु, साधु, संत तो पहचान में आ भी जाते हैं किन्तु सद्गुरु की पहचान ऐसी है कि वह परख में नहीं आते।

(६) सद्गुरु की कोई भेषभूषा नहीं होती। वह जन साधारण की भाँति रहते हैं। बाहर से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो संसार में फँसे हुए हैं परन्तु वह कर्त्तव्य पालन इस प्रकार से करता है जैसे कि कमल के पत्ते पर पानी का प्रभाव नहीं पड़ता।

(७) सद्गुरु कोई चमत्कार नहीं दिखाता है। संसार के मनुष्य यदि उनके सामने सांसारिक इच्छायें रखते हैं तो वह उनकी इच्छाओं को पूरी करने के बजाय उन इच्छाओं को अपने आत्मबल द्वारा जड़मूल से नष्ट कर देता है।

(८) कोई भी व्यक्ति किसी भी आपत्ति और मुसीबत में अपना दुखड़ा रोता है तो सद्गुरु उसको इतना आत्मबल दे देता है कि वह अपने प्रारब्ध कर्मों को आसानी से भोगते हुए ईश्वरीय मार्ग से विचलित न होने पावे।

(९) सद्गुरु का कार्य संसार से निकालने का है न कि उसको संसार में फँसाने का।

(१०) कर्म और उसके फल का सिद्धांत अटल है। उसी के अनुसार प्रारब्ध बनता है कि जिसको भोगने के लिये मनुष्य जन्म लेकर आता है। सद्गुरु का काम आसानी से भोग चुकता करा देने का है, ब्याज पर ब्याज चढ़ाने का नहीं है।

(११) सद्गुरु कृपा यह है कि वह जिज्ञासु के हृदय के अन्धकार को दूर करके जैसा वह स्वयं है वैसा ही उसको बना देता है।

(१२) जीवन के ध्येय को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की प्राप्ति अनिवार्य है।

(१३) कहा गया है कि गुरु कीजिए जान और पानी पीजिये छान । साधारण तौर पर गुरु की पहचान जिज्ञासु के जांच में आना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है ।

(१४) बाहरी तौर पर गुरु की पहचान के लिए यह हो सकता है कि जो व्यक्ति जहाँ पर पैदा हुआ है, जहाँ पर उसने विद्या पायी है, अपने जीवन में उसने जो भी पेशा किया है, उन सब अवस्थाओं में उनके सदाचार व ईमानदारी में लोगों ने उसकी किस हद तक आलोचना और प्रशंसा की है ।

(१५) जिसमें स्वार्थ न हो, अहंकार न हो, जो प्रेमी हो, परोपकारी हो, सदाचारी हो और साथ ही साथ ईश्वर भक्त भी हो । यदि ऐसा व्यक्ति संत कृपा से मिल जावे तो उसी को अपने आप को समर्पण कर देना चाहिए ।

(१६) शास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में चाहे जीवन व्यतीत कर दिया जाय, परन्तु परम तत्व की प्राप्ति बिना सद्गुरु की कृपा से कदापि सम्भव नहीं ।

(१७) माता-पिता जन्म देने के कारण पूजनीय हैं । विद्या गुरु विद्या देने के कारण पूजनीय है । और भी जितने गुरुजनों से हमे शिक्षा मिलती है वे सब पूजनीय हैं परन्तु सद्गुरु स्वयं ही शिष्य की पूजा अपनी अन्तरात्मा से उसी प्रकार करता है जिस प्रकार से भक्त भगवान की पूजा करता । सद्गुरु की प्रशंसा के लिये ढूंढने से भी शब्द नहीं मिलते ।

(१८) सद्गुरु श्री भगवान की भक्ति को चारों तरफ से लुटाते रहते हैं । वे पात्र, सुपात्र नहीं देखते । उन्हीं के प्रताप से संसार टिका हुआ है ।

पूज्य चच्चाजी स्वयं कहा करते थे कि नर शरीर व सत्गुरु की प्राप्ति ईश्वर की महान कृपा से मिलती है । उसकी पुष्टि रामायण की इन चौपाइयों से जो वह कहा करते थे, होती है—

आकर चार लाख चौरासी, योनि भ्रमत यह जिव अविनाशी ।
फिरत सदा माया कर प्रेरा, काल कर्म स्वभाव गुण घेरा ।
कबहुक कर करुणा नर देही, देत ईश विन हेतु सनेही ।
नर-तन भव-वारिध कह वेरो, सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।
कर्णधार सत्गुरु दृढ़ नावा, दुर्लभ साज सुलभ कर पावा ।

जो न तरे भव सागर, नर समाज अस पाय ।
सो कृत निन्दक मन्द मति, आतम हनि गत पाय ।।

इस प्रकार का साधन व सत्संग प्राप्त करके भी जो इस संसार को पार नहीं करता वह आत्म हत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है ।

इस प्रकार तीर्थों का फल, संतों का सत्संग व सत्गुरु की प्राप्ति पूज्य चच्चाजी के प्राप्त होने पर हुई जो कि जीवन का परम लक्ष्य है । सभी धर्मों, सम्प्रदायों, ऋषि, मुनियों ने सत्गुरु की प्राप्ति को ही ब्रह्म की प्राप्ति अथवा उसका साधन बताया है । रामायण में श्री रामजी ने गुरु की महत्ता को सर्वश्रेष्ठ कहा है । गीता में श्री कृष्ण जी ने कहा है कि संत व सत्गुरु मेरे ही रूप हैं और उनके चरणों की धूलि को मैं स्वयं अपने मस्तक पर लगाता हूं । निराकार रूप की साधना, देवी, देवताओं अथवा पाषाण मूर्तियों की आराधना करने में बड़े विघ्न व बाधाओं का सामना करना पड़ता है, घोर तपस्या व कठिन परिश्रम करने पर भी शाँति नहीं मिलती लेकिन चैतन्य रूप सत्गुरु की साक्षात् सेवा के फलस्वरूप उनकी कृपा से क्षणमात्र में ही जीवत्व को शिवत्व प्राप्त हो जाता है । संत व सत्गुरु प्रकाशमान दीपक की तरह होते हैं । जैसे एक प्रज्वलित दीपक से दूसरा दीपक भी प्रज्वलित होकर उसी भाँति देदीप्यमान हो जाता है उसी भाँति सत्गुरु भी अपने शिष्य के हृदय को दिव्य प्रकाश देकर उसको अपने ही रूप में परिवर्तित कर देते हैं ।

पूज्य चच्चा जी का जीवन सरल, सादा, सत्य व प्रेमपूर्ण रहा । उदारता व परोपकार उनके जीवन का मुख्य ध्येय रहा । स्वयं कष्ट सहकर दूसरों की मदद करना ही उनका स्वभाव था । सत्यता व ईमानदारी उनके आभूषण थे । कोई भी सत्संगी, रिश्तेदार, अथवा अन्य व्यक्ति किसी भी प्रकार की उन्हें भेंट देने का साहस नहीं कर सकता था और न वह इस प्रकार की चीजों को स्वीकार ही करते थे । प्रसाद के रूप में भी वह आटे की पंजीरी स्वीकार करते थे । चच्चाजी में पिता तुल्य दया व कृपा, माता के समान प्रेम, बंधु-बाँधवों की भाँति सहृदयता, पापियों के लिए पतितपावनताज्व भक्तों व प्रेमियों के लिए परब्रह्म परमात्मा के भाव प्रदर्शित होते थे । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस किसी ने उनको जिस भाव से देखा उसी रूप में वह उसको भासित होते रहे:-

"जिनकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।"

पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में जो भी व्यक्ति आया वह यही कहता था कि चच्चा जी मुझसे अधिक किसी को नहीं चाहते । प्रेम की पराकाष्ठा का कैसा अद्भुत दृश्य उनके स्वरूप से छिटकता था वह अवर्णनीय है । उनकी मृदुल मुस्कान, उनकी मधुर वाणी, प्रेमपूर्ण दृष्टि तथा दिव्य प्रकाश से भरा सत्संग का स्मरण होते ही हृदय में आनन्द, शरीर में रोमांच व नेत्रों में प्रेमाश्रु उमड़ पड़ते हैं:-

यह दर्द, ये आँसू, ये तड़प और ये आहें ।
किस मुँह से कहें, इश्क में आराम नहीं है ।।

परम पूज्य गुरुदेव चच्चा जी की आध्यात्मिक साधना का मार्ग "प्रेम मार्ग" है। उनकी यह साधना कितनी सरल, सत्य व महान है इसका अनुभव साधक लोग स्वयं करते होंगे। इसकी महानता के बारे में पूज्य चच्चाजी का कहना था कि जहाँ ईश्वर प्राप्ति के और सारे साधन खत्म हो जाते हैं वहाँ से हमारी साधना आरम्भ होती है। उनकी साधना में किसी प्रकार का बन्धन नहीं है सभी मत के अनुयायी इसका अभ्यास करके परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। कैसा भी, किसी भी वर्ण का, दुराचारी, पापात्मा भी उनके अभ्यास पर चलकर शुद्धात्मा बन सकता है। इस सम्बन्ध में एक बड़ा रोचक प्रसंग है: एक बड़ा डाकू एक ग्राम में डाका डालने गया। जिस घर में उसने डाका डाला उस घर की महिला परम पूज्य चच्चा जी के सत्संग में थी। जब वह डाकू उस घर में डाका डालने गया तो वह महिला जाग उठी। उस महिला ने डाकू को देखकर कोई और अस्त्र शस्त्र पास न होने के कारण पूज्य चच्चा जी की फोटो को उस डाकू के सिर पर उठाकर फेंकी। वह फोटो उस डाकू के मस्तक पर लगी और उसका काँच टुकड़े-टुकड़े होकर फोटो जमीन पर गिर गई। डाकू के सिर में चोट लगी और उसने भूमि पर पड़ी हुई उस फोटो के देखा। फोटो को देखते ही उसकी वृत्ति बदल गई और वह डाकू उस फोटो को लेकर चच्चा जी का पता लगाते लगाते उनके पास आया और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक बनाया। पूज्य चच्चा जी कभी किसी से भी कोई आदत भली या बुरी छोड़ने को नहीं कहते थे। उनका कहना था कि यह सारी चीजें अपने आप अभ्यास, गुरु कृपा व सत्संग द्वारा ऐसे खत्म हो जाती हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा मन के सारे विकार खत्म होकर वह निर्मल जल की भाँति शाँत होकर ब्रह्म की आत्मवयता को प्राप्त हो जाता है। पूज्य चच्चा जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "जिस तरह उपाय करने पर लकड़ी से अग्नि और दूध से घी निकलता है उसी प्रकार सत्संग, सन्तों की कृपा तथा अभ्यास व साधन से आत्मपद तथा ईश्वर भक्ति की प्राप्ति होती है। उन्होंने लिखा है कि "सत्संग से बढ़कर मनुष्य के कल्याण के लिए कोई उत्तम वस्तु नहीं है। सत्संग से ज्ञान होने पर माया दुखदायी के बदले सुखदायी हो जाती है। भगवान के भक्त माया के अधीन नहीं होते किन्तु माया स्वयं उनके सामने सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है परन्तु श्री भगवान के भक्तों को उसकी ओर देखने का अवकाश ही नहीं मिलता। पूज्य चच्चा जी धार्मिक साहित्य व ग्रन्थ आदि पढ़ने को कभी नहीं कहते थे। उन्होंने लिखा है कि सत्संग किए बिना केवल ग्रन्थ अवलोकन द्वारा अभ्यास करने से सब साधन व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए ज्ञान और भक्ति प्राप्त करने के लिए अनुभवी महात्माओं के पास सत्संग अवश्य करना चाहिये। पूज्य चच्चा जी के अभ्यास व साधना की स्थिति कबीरदास जी के निम्न पदो से स्पष्ट रूप में प्रकट होती है। इस पद को पूज्य चच्चा जी झाँसी में श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव जी से अक्सर सुना करते थे:—

"साधो सहज समाधि भली,
गुरु प्रताप जा दिन ते जागी दिन-दिन अधिक चली।
जँह तँह डोलो सो परिक्रमा, जो कछु करों सो सेवा।
जब सोवों तब करों दन्डवत, पूजों और न देवा॥
कहौं सो नाम सुनो सो समरन खांव पियों सो पूजा।
गृह उजाड़ एक सम लेखों, भाव मिटावों दूजा॥
आँख न मूदों कान न रूदों, तनिक कष्ट नहिं धारों।
खुले नैनन पहिचानों हँस हँस, सुन्दर रूप निहारों॥
शब्द निरन्तर से मन लागो मलिन बासना त्यागी,
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटे, ऐसी तारी लागी॥
कहें कबीर यह उन मुन रहनी सो परगट में गाई,
सुख दुख से कोई पर परम पद, सोई पद रहा समाई॥

गीता में श्री कृष्ण जी ने कर्मयोगियों के जो लक्षण बताए हैं उनसे कहीं अधिक पूज्य चच्चा जी में विद्यमान थे। गृहस्थ आश्रम में रहकर तमाम कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने कर्तव्य पालन का सत्यता से निर्वाह करते हुए उनका जीवन कमल के पत्ते के समान निर्लिप्त था। वह सर्वशक्तिमान होते हुए भी कभी चमत्कार दिखाने में विश्वास नहीं करते थे। दयालु स्वभाव के कारण कभी किसी के दुख का उन्होंने अपनी कृपा से निवारण किया तो वह उसका कोई अन्य कारण ही बता कर उस व्यक्ति को सन्तुष्ट कर दिया करते थे। चच्चा जी के जीवन से सम्बन्धित इसमें एक और प्रसंग इस प्रकार है:- एक मुसलमान फकीर चच्चा जी के भक्तों में से थे। वह पूज्य चच्चा जी के पास आये। चच्चा जी ने उनसे कहा "मौलाना तुम गंडे तावीज बनाना शुरू करो उससे लोगों को फायदा होगा। उस फकीर ने कहा चच्चा जी मैं कुछ नहीं जानता आपको ही जानता हूं। चच्चा जी ने कहा तुम शुरू करो सब हो जायेगा। उस फकीर ने गंडे तावीज लोगों को देना शुरू कर दिया। उससे लोगों को फायदा होना शुरू हो गया और उस फकीर की बड़ी ख्याति हो गई। एक दिन चच्चा जी ने एक दुखी आदमी को अपने एक निजी व्यक्ति द्वारा मौलाना के पास भेजा कि जाओ इनको मौलाना से तावीज दिला दो। इनका कष्ट दूर हो जायेगा। वह सत्संगी उस व्यक्ति को मौलाना के पास ले गए और कहा कि चच्चा जी ने इनको आपके पास तावीज देने को भेजा है। मौलाना ने तावीज दिया और उस आदमी को आराम हुआ। जो व्यक्ति चच्चाजी के कहने से उसको लेकर गए थे वह मौलाना से कहने लगे-'मौलाना साहब, आपके तावीज से बड़ी जल्दी फायदा हो जाता है मुझे भी बतायें कि आप यह तावीज किस प्रकार बनाते हैं।" मौलाना ने माथा ठोका और कहा:-"आप पूज्य चच्चा जी के इतने घनिष्ठ हैं फिर भी आप उनकी महिमा को नहीं जानते। खुदा कसम

मैं इसमें कुछ भी नहीं करता हूं। तावीज में मैं सिर्फ चच्चा जी का नाम ही लिख देता हूं। यह लिखकर ही दे दे देता हूं कि 'बहुकुम जनाब [1] श्री भवानीशंकर जी'। उन्हीं के नाम से लोगों को फायदा हो जाता है।"

पूज्य चच्चाजी के सम्मुख जाने से ही मनुष्य की समस्याओं का समाधान आप से आप हो जाता था और वह परम शांति का अनुभव करता था। अहंभाव को उन्होंने कभी अपने पास फटकने भी नहीं दिया। उनकी वेश-भूषा बिल्कुल सादी थी। धोती, कुर्ता ही वह हमेशा पहनते थे। आरम्भ में वह किसी को चरण-स्पर्श भी नहीं करने देते थे। स्वयं को उन्होंने इतना गुप्त व संसार में लिप्त रक्खा कि कोई भी उनकी महानता को नहीं समझ सका। उनका स्वरूप इतना विराट था की आर्त व दीन होकर चच्चा जी के स्मरण मात्र से ही कठिन से कठिन विपत्तियों में, दुख दर्द बीमारी, जन्म मृत्यु, शादी आदि में उनसे इस प्रकार सहायता प्राप्त होती रही जिस प्रकार द्रोपदी चीर-हरण के समय उसकी पुकार पर भगवान कृष्ण ने सहायता की थी अथवा गज की करुण पुकार सुनकर भगवान स्वयं नंगे पैर सहायता के लिए दौड़े थे। वैसे पूज्य चच्चा जी हर समय जिस प्रकार माता पिता अपने छोटे-छोटे बालकों की देखभाल करते हैं उसी भाँति रक्षा करते रहते थे परन्तु मैं अपना स्वय का एक अनुभव आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता हूँ जो कि मेरी जिन्दगी में अविस्मरणीय रहेगा। लगभग १९५१ की बात है। उस समय इलाहाबाद में प्रथम कुम्भ मेले का आयोजन हुआ था। मैं उस समय लखनऊ में था। पूज्य भाई साहब कृष्णदयाल जी (पूज्य चच्चा जी के सुपुत्र) जो उस समय इलाहाबाद में ही थे, का पत्र मेरे पास आया कि चच्चा जी कुम्भ मेले के अवसर पर इलाहाबाद आ रहे हैं। मेरी इच्छा भी पूज्य चच्चा जी के दर्शनों की हुई। कुम्भ मेला की इतनी उत्सुकता नहीं थी। मैंने अपना कार्यक्रम इलाहाबाद जाने का बनाया। मेरे साथ पड़ोस की ३,४ महिलायें भी व मेरे परिवार के लोग जाने को तैयार हुए। इस प्रकार लगभग १२ व्यक्ति जिसमें सभी महिलायें व बच्चे थे सिर्फ मैं व मेरा छोटा भाई पुरुष थे। हम लोग निश्चित समय पर लखनऊ स्टेशन पहुँचे। उस समय लाखों व्यक्तियों की भीड़ स्टेशन पर कुम्भ जाने के लिये तैयार थी। स्पेशल रेलगाड़ियाँ हर घन्टे लखनऊ से इलाहाबाद जाती थीं। जाड़े का मौसम था इसलिए सामान भी काफी था। स्टेशन पर कुली आदि भी नहीं मिलते थे। किसी प्रकार सामान को लेकर हम लोग प्लेटफार्म पर पहुँचे। गाड़ी के आते ही लोगों की भीड़ उसमें घुस गई। मैंने किसी प्रकार महिलाओं और बच्चों को जनानी डिब्बे में बिठाया परन्तु कुछ सामान व मैं स्वयं ट्रेन के अन्दर न जा सके। इतने में ही गाड़ी चल दी। उस समय की व्यथित स्थिति का वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। सब महिलाओं व बच्चों की मृत्यु का चित्र मेरे सामने नाचने लगा और मैं व्यथित अवस्था में रोता हुआ प्लेटफार्म पर बैठकर पूज्य चच्चा जी का स्मरण करने लगा। पाँच मिनट तक मेरी हालत बेहोशी की रही।

[1] पूज्य चच्चा जी का नाम 'भवानीशंकर जी' था।

इसके पश्चात् आँख खोलने पर मैंने देखा कि वही ट्रेन कुछ दूर जाकर फिर वापिस आ रही है। मेरी जान में जान आई। आँसू पोंछते हुए मैंने चच्चा जी को धन्यवाद दिया और ट्रेन आने पर बाहर ही उसके डण्डे पकड़ कर लटक गया। कुछ स्टेशन निकलने के बाद मैं अन्दर घुसकर रात भर ट्रेन के पैखाने में बैठा रहा। १० घन्टे की कठिन यात्रा के बाद प्रयाग स्टेशन पर गाड़ी पहुँची। उस समय प्रातः ५ बजे का समय था। सब लोगों को उतारा। प्रयाग पहुँचने पर सब लोगों की इच्छा हुई कि ५ बजे प्रातः का समय प्रयाग में कुम्भ स्नान के लिए महान शुभ होगा। परन्तु मैंने उन सबसे कहा कि मैं यहाँ पूज्य चच्चा जी के दर्शनों के लिए आया हूँ उनकी कृपा से हम सब लोगों की जान बच गई है इसलिये मैं पहले चच्चा जी के दर्शन करूँगा इसके बाद कुम्भ की बात सोची जायेगी। स्टेशन पर कुली व सवारी मिलना कठिन था। किसी प्रकार सारा सामान लेकर सब लोगों सहित मैं प्रयाग स्टेशन से पुराना कटरा जहाँ चच्चा जी ठहरे थे चल दिया। मैंने मकान देखा नहीं था। हम लोग कटरा पहुँच कर बाजार में ही बैठ गये। सौभाग्य से भाई साहब कृष्णदयाल जी भी वहां आ पहुँचे। उनके साथ मैं घर पहुँचा। पूज्य चच्चा जी के चरण स्पर्श किए। मेरे बगैर कुछ कहे ही उन्होंने कहा "काशीप्रसाद तुमको इस प्रकार का खतरा मोल नहीं लेना चाहिये था।" मैं सिर्फ कुछ प्रेमाश्रु ही भेंट कर सका। इस घटना से सिद्ध होता है कि वह किस प्रकार से हर क्षण रक्षा किया करते थे। हम सब लोगों की मृत्यु उस अवसर पर सिर पर मंडरा रही थी। यदि यह सब लोग अकेले ही प्रयाग पहुँचते तो पता नही वहां पहुँच कर उन सबका क्या हाल होता। दूसरे यदि मैं उन सबकी बात मानकर ५ बजे प्रातः संगम स्नान करने को तैयार हो जाता तो वह समय वही था जिस वक्त कि प्रयाग में संगम स्नान के समय हजारों आदमियों की डूबकर मृत्यु हुई थी। परन्तु मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। इसी अवसर पर पूज्य चच्चा जी ने कहा था कि सत्गुरु का सत्संग ही तीर्थराज 'प्रयाग' है। यह चौपाई उन्होंने पढ़ी थी :—

"मुदमंगल मय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू"

जिस तीर्थराज में रामभक्ति रूपी सुरसरि की निर्मल धारा, ब्रह्म विचार रूपी सरस्वती और कर्मकाण्ड रूपी यमुना की धारायें मिल कर त्रिवेणी की अद्भुत छटा दिखलाती हैं उसके समान संसार में और कोई संगम नहीं है। हमारे बहुत से सत्संगी भाइयों द्वारा यह कहते सुना गया है कि उनकी विपत्तियों में स्वयं चच्चाजी ने दर्शन देकर उनका कष्ट निवारण किया। मेरी पूज्य माता जी कहा करती थीं कि उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि चच्चा जी उनके साथ चल रहे हैं। मेरे छोटे भाई का जीवन बनाने में उनका ही श्रेय था। वह अधिक पढ़ा लिखा नहीं था। परन्तु उनकी नौकरी की परीक्षा के समय वह बतलाता है कि कोई अज्ञात व्यक्ति स्वयं आकर उसके पर्चों का हल करा गया उसके पश्चात् उनके दर्शन उसको कभी नहीं हुए। पूज्य चच्चा जी

आध्यात्मिक बातों को न पूँछ कर पारिवारिक स्थिति की ही जानकारी किया करते थे और अपने दिव्य प्रकाश से सबको सांत्वना व शांति प्रदान करते रहते थे। उनका स्वरूप समदर्शी था। वह कभी किसी की बुराइयों को कुकर्मों को तथा पापों को नहीं देखते थे और न सुनते थे। अपनी पुस्तक में उन्होंने लिखा है–"जब कोई किसी की निन्दा कर रहा हो तो उसे मत सुनो। वहां से चल देना ही उस समय सबसे अच्छा है। अगर निन्दा के शब्द कान में पड़ ही जाँयें तो उनका स्वाद न लेकर उसी समय दृढ़ता से मन में कहो कि यह सत्य नहीं है और मन से ऐसा कहना उस समय तक जारी रक्खो जब तक वह शब्द तुम्हारे कान द्वारा निकल न जावें। अगर ऐसा प्रयश्चित न करोगे तो वह निन्दा के शब्द छूत की बीमारी की तरह तुम्हारे सारे शरीर में फैलकर असाध्य रोग पैदा कर देंगे।" पूज्य चच्चा जी का कहना था कि उनका काम तो धोबी और मेहतरों का है। वह सबके मन के मैलों और पापों को धोते और साफ करते रहते थे। इन सब बातों का मनन करने से यह सिद्ध होता है कि पूज्य चच्चाजी पूर्ण परब्रह्म की स्थिति में थे। एक अनुभव इसका मैं आप लोगों के समक्ष प्रस्तुत करता हूं। सन् १९५२ में चच्चाजी लखनऊ पहुँचे थे। मेरे घर पर ठहरे। उन्होंने कहा:–"काशीप्रसाद यहाँ से अयोध्या जी पास हैं वहाँ चला जाय।" मैंने सहर्ष उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। चच्चा जी सहित हम लोग अयोध्या जी पहुँचे। हमारे साथ पंडित महावीरप्रसाद मिश्र व सम्भवतः भाई कृष्णदयाल जी भी थे। उस समय मैं हनुमान जी पर अधिक विश्वास करता था और हर शनिवार को मंदिर जाकर प्रसाद चढ़ाया करता था। सौभाग्यवश अयोध्या जी में भी शनिवार पड़ गया। मेरे मन में विचार आया कि अयोध्या जी में हनुमान गढ़ी पर प्रसाद चढ़ाया जाय। ऐसा शुभ अवसर कब मिलेगा। यह सोचकर मैंने प्रसाद मंगा लिया। प्रसाद मंगा लेने के बाद मेरे मन में यह अन्तर्द्वन्द्व पैदा हुआ कि पूज्य चच्चाजी भी मौजूद हैं उनके होते हुए हनुमान जी को प्रसाद चढ़ाना चच्चाजी का अपमान होगा। मैं इस उलझन में कमरे में बैठा हुआ था। इतने में मैंने देखा कि कमरे में लाल प्रकाश हुआ और एक विशालकाय बन्दर आकर मेरे सामने रक्खे हुए प्रसाद में से कुछ भाग उठाकर ले गया। मेरी आँखें खुली और यह देखकर कि हनुमान जी ने स्वयं आकर प्रसाद ग्रहण किया है तथा पूज्य चच्चा जी की उपस्थिति को देखकर उनका स्वयं आना उनका चच्चाजी के प्रति आदर प्रदर्शित करना था। उसी समय से मैंने हनुमान जी से विदा माँग ली और चच्चा जी प्रति के श्रद्धा उमड़ आई। वह दृश्य कभी भुलाया नहीं जा सकता। उस रात्रि पूज्य चच्चा जी ने जो प्रेम की वर्षा की थी उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है मानो वह मेरी परीक्षा ही ले रहे थे। वह मुझे अकेले सरयू नदी के किनारे ले गए और अपने दिव्य प्रकाश द्वारा सत्संग कराया तथा मेरा हाथ थामकर मुझे अभयदान प्रदान किया। उस अलौकिक दृश्य को कभी भुलाया नहीं जा सकता और ऐसा प्रतीत होता है कि हमेशा के लिए उन्होंने मेरा हाथ थाम लिया। इस प्रकार की अनेक कृपा इस तुच्छ दास पर उन्होंने की तथा तुरीय अवस्था तक

उन्होंने पहुँचाया जिसकी प्राप्ति कठिन साधन व तपस्या से भी सम्भव नहीं होती।

परमपूज्य गुरुदेव चच्चा जी की साधना के चार मुख्य लक्ष्य थे जो इसप्रकार हैं:–

१–सदाचार

सदाचार के सम्बन्ध में परम पूज्य चच्चा जी ने अपनी पुस्तक "गृहचर्या में नर नारी सहयोग" लिख कर साधकों को कृतार्थ किया है। इसमें रामायण, गीता के उपदेशों का सार तथा उनके स्वयं के अनुभवों का दिग्दर्शन कराया गया है। इस पुस्तक के अध्ययन मात्र से स्वयं चच्चा जी ने लिखा है कि पाठकों को जो लाभ होगा वह अभूतपूर्व होगा। यह पुस्तक जीवन की सफलता की कुन्जी है तथा इसके अनुसार यदि कोई अपने जीवन को ढाल सके उसके लिए कोई साधन व अभ्यास की आवश्यकता नहीं है और वह इसके अनुसार चलकर ही परब्रह्म की स्थिति को सहज में प्राप्त कर सकता है। सभी के हृदय के अन्दर ईश्वर विराजमान है अथवा प्रत्येक जीव ब्रह्म का ही अंश है। भगवान राम, कृष्ण व महात्मा गाँधी अपने आदर्श चरित्र के कारण ही इतने प्रसिद्ध हुए। सदाचारी पुरुष को कोई तप या साधन करने की आवश्यकता नहीं होती। वह कर्मयोग द्वारा ही ब्रह्म की आत्मैवयता को प्राप्त कर लेते हैं। सदाचारिता से मनुष्य में सभी ईश्वरीय गुण, सुख, सन्तोष, वैराग्य, विवेक, प्रेम, सत्य व अहिंसा स्वतः ही आ जाते हैं और वह ब्रह्मानन्द की अनुभूति करने लगता है। महात्मा गाँधी इसी कोटि के सन्त थे। सत्य, अहिंसा व सदाचार ही उनके जीवन के परम लक्ष्य थे।

बन्दो गुरुपद कंज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुन्ज, जासु बचन रवि-कर-निकर॥

२–मन की साधना

परम पूज्य गुरुदेव चच्चा जी की साधना व अभ्यास का मुख्य ध्येय मन की साधना ही है। चच्चा जी ने बतलाया कि इस शरीर के तीन रूप हैं। स्थूल, सूक्ष्म व सूक्ष्म से भी परे आत्मा है। स्थूल शरीर को हम सब देखते ही हैं। सूक्ष्म शरीर में मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि हैं तथा इससे परे आत्मा है। मन ही एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जो हमारे शरीर की इन्द्रियों को कार्यरूप में परिणित करने की आज्ञा देता है। बुद्धि इसका वज़ीर है। शरीर में मन ही एक ऐसा अंग है जो मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार करा सकता है और यही मनुष्य को नीचे से नीचे गिरा सकता है। शरीर के अन्त हो जाने पर और सब चीजें नष्ट हो जाती हैं। मन ही एक ऐसी वस्तु है जो अपने साथ कर्मों की गठरी बाँधकर दूसरे जन्म में उनका फल भोगता है। इस प्रकार यह जीव को चौरासी लाख योनियों में घुमाता व भटकाता रहता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा इन्द्रिय जन्य सुखों के भोग में ही यह क्षणिक आनन्द में मगन रहता है। जन्म-जन्मान्तरों के कर्म व संस्कार इसको इस प्रकार घेरे रहते हैं कि यह कभी भी सोते या जागते किसी भी अवस्था में स्थिर नहीं रहता। सोते समय यह नाना प्रकार के स्वप्न देखता

रहता है और जागृत अवस्था में सारे संसार को अपने अन्दर बसा कर उसमें रस लेता रहता है। चंचल स्वभाव के कारण यह अपने को कहीं स्थिर नहीं रखता और न शाँति का ही अनुभव करता है तथा अन्त समय भी यह उन्हीं सब बातों को स्मरण करता हुआ शरीर त्यागता है। गीता में कहा है:—

यं यं चापि स्मरन भवं, त्यजत्यते क्लेवरम।
तत मवेति कौन्तय, सदातद् भाव भावितः ॥

अर्थात् जिस-जिस भाव को स्मरण करता हुआ जीव प्राण छोड़ता है उसी-उसी भाव को वह दूसरे जन्म में प्राप्त करता है। और यही बात भी है कि जीवन भर मन जिसमें अधिक लगा रहेगा, वही अन्त समय में भी याद आयेगा, यदि स्त्री का ध्यान आयेगा, तो फिर अगले जन्म में स्त्री होना पड़ेगा, पुत्र में अधिक आशक्ति रहेगी तो फिर मर कर पुत्र होना पड़ेगा। संसार में सद्गति चाहते हो तो सतर्क होकर व्यवहार चलाओ और जहाँ तक हो सके मन को व्यवहार से बचाओ और मन का थोड़ा सा सहयोग देकर तन और धन से व्यावहारिक कार्य करो। वास्तव में देखा जाय तो मन को कोई नहीं चाहता है। यह व्यर्थ ही अपने आप को नश्वर वस्तुओं में फँसाये रहता है। इष्ट मित्र, कुटुम्बी आदि सब अपनी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहते हैं। आपके मन को कोई नहीं चाहता। यदि आप अपने पुत्र को खिलौने आदि या जो वस्तु वह मांगे उसका प्रबन्ध न करो और उससे कहो कि बेटा हम मन से तुमको प्यार करते हैं तो क्या वह इससे सन्तुष्ट हो जायेगा। अपनी स्त्री की आवश्यकताओं की यदि पूर्ति न करो और उससे कहो कि हम हमेशा तुम्हारा स्मरण मन से करते रहते हैं, मन से तुमको कभी नहीं भूलते तो क्या वह सन्तुष्ट रहेगी। इष्ट-मित्र जो तुमसे व्यवहार में सहायता-सहयोग चाहते हैं यदि उनको सहयोग न दो और कहो कि मन से हम आपको बहुत मानते हैं, तो वे यही कहेंगे कि अपना मन अपने पास रखिये और बन सके तो हमारा अमुक-अमुक कार्य कर दीजिये। कहने का तात्पर्य यही है कि संसार में कोई भी आपके मन को नहीं चाहता। यहाँ सभी तुम्हारे तन व धन के ग्राहक हैं। मन तो तुम जबरदस्ती दूसरों के गले लगाते हो। जिस मन को कोई नहीं चाहता वही मन ईश्वर की प्राप्ति मे काम आता है। पूज्य चच्चाजी कहा करते थे कि उन्हें कोई भेंट नहीं चाहिए मन की भेंट कोई दे सके तो दे। इसलिए संसार के बाजार में तन और धन से व्यापार करना चाहिये और मन को अपने इष्टदेव के चरणों में लगाना चाहिए। प्रश्न यह होता है कि साँसारिक कार्यों में मन न लगाया जाय तो कार्य कैसे होंगें। चच्चा जी के साधन में यही बतलाया गया है। उनका कहना था कि जिस प्रकार कोई लोभी या कन्जूस अपने धन की चिन्ता रख कर उसी में मन लगाये रहता है, कोई कामी पुरुष किसी स्त्री अथवा कामुक वस्तुओं का ध्यान किया करता है। कोई सती नारी अपने पति के दर्शन हृदय में हमेशा करती रहती है वह सब भी संसार का कार्य करते ही हैं। उसी भाँति मन को भी इष्टदेव श्री गुरु भगवान के चरणों में लगाकर संसार के कार्य करते रहना चाहिये।

—क्रमशः

श्री गुरु-पद-रज-महिमा

☐ रचयिता-प्रो० रामस्वरूप खरे, एम. ए., साहित्यरत्न

श्री गुरु के पद-कंज युग-भव-वारिधि-जलयान।
सुमरि-सुमरि नरतरहिं भव-होय तुरत कल्यान ॥

जीवन-नौका क्षत-विक्षत-आन पड़ी मँझधार।
पार करहु तो पार है-केवल कृपा अधार ॥

युगल चरण अरविन्द का-जोजन धरते ध्यान।
रिद्धि-सिद्धि पीछें फिरें-जाने सकल जहान ॥

बाँह पकरि ममनाथ अब-जाना कहीं न भूल।
दीन-अकिंचन हीन मैं-तुम-भव-वारिधि-कूल ॥

सदगुरु की पद-रज विमल-अंजन सुखद अमोल।
भाव-सींक से आँजकर-अलख लखैं दृग खोल ॥

गुरु-पद-पंकज छुअत ही-मन-अलि जाता भूल।
बन्धन लगता सुखद अति-मुक्ति विचारी धूल ॥

श्री सदगुरु-पद-रज विमल-संजीवनि सुख-मूल।
देख भाल, यमदूत फिर-निकट न आते भूल ॥

गुरु पद-पद्म-पराग की-महिमा अमित अनूप।
पान किये नर परहिं नहिं-विषम-अन्ध भव-कूप ॥

'पूजा के फूल' से साभार।

एक सत्संगी की दैनन्दिनी से

☐ प्रस्तोता—बाबू श्री शीतलप्रसाद जी झांसी (उ. प्र.)

प्रश्न—महाराज, गुरु और सदगुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर—बिना सच्चा गुरु मिले यह बात जानी नहीं जा सकती। सत्संग और सद्गुरु की महिमा यही है कि अपना-सा बना ले और अपने रंग में रँग ले। अगर शिष्य में यह सामर्थ्य हो तो वह खुद ही गुरु है उसको फिर सत्संग में सत्पुरुष के पास जाने की जरूरत ही क्या है ? गुरु सिकलीगर या धोबी होता है जो मैल को साफ करके और फिर अपने रंग को आब व ताब देता है। जो नुस्खा बताकर अलग हो जाते हैं उनको गुरु कहते हैं और जो दवा-दुआ, परहेज व पथ्य सबकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते हैं और (अपनी) सामर्थ्य से सब कुछ करके जब तक मरीज को अपना-सा-सद्-वैद्य नहीं बना लेते, चैन नहीं लेते उन्हें सद्गुरु कहते हैं। यह ईश्वर की खास कृपा व बड़े भाग्य से मिलते हैं।

प्रश्न—तो शिष्य को कुछ करना ही नहीं पड़ता, सदगुरु सब कर लेते हैं ?

उत्तर— शिष्य और शिशु एक ही धातु से बने हैं। शिशु बालक को कहते हैं। इसी तरह आत्मिक-जगत में जो शिशु यानी 'स्प्रीचुअल चाइल्ड' है उसको शिष्य कहते हैं। अब आप जरा शिशु यानी बालक की हालत पर गौर कीजिये। यह स्वयं कुछ नहीं करता। माता उसकी हर तरह की परवाह और परवरिश करती है। पाखाना, पेशाव, सरदी से बचाना, गर्मी से महफूज रखना, खाना-पीना जुमला काम माँ करती है। इसी तरह पर गुरु भी शिष्य का कुल काम खुद करता है। इसलिये कहा गया है:-

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव॥"

जिस तरह माँ दूध की धारें पिलाती है और उसके ऐश-आराम का ख्याल रखती है इसी तरह पर गुरु भी महज ईश्वरीय यानी आत्मिक आनन्द अपने शिष्य को पिलाता है। इसलिये माँ-बाप है। गर्जे कि तमाम फ़रायज यह बच्चे की अदा करती है, इसी तरह गुरु भी करता है। लेकिन शिशु यानी नाबालिग़ बच्चा की (जिसने अपने

आपको बिल्कुल माँ के ऊपर छोड़ दिया है।) बालिग़ बच्चे की नहीं। इसी तरह जो सच्चा जिज्ञासु होता है वह जिसवक्त गुरु धारण करता है मिस्ल नौजाईदा बच्चे के, अपने आपको गुरु के हवाले कर देता है और हर बात को गुरु की आज्ञानुसार करता है। अपनापन बिल्कुल त्याग कर देता है। उसके सब काम गुरु करता है और जब तक उसको हृष्ट-पुष्ट करके अपना-सा नहीं बना लेता, चैन नहीं लेता। लेकिन जब बच्चा अपने आपको समझदार समझने लगता है उस वक्त माँ भी उससे लिहाज करने लगती है। इसी तरह पर जो बालक यानी शिशु कुछ भी अहँकार को बनाये रखता है उससे गुरु भी वैसा ही व्यवहार करने में ताम्मुल करता है। छोटे बच्चे के पेशाब व पाखाना के मुकामात तक को छूने में माँ जरा भी ताम्मुल नहीं करती। लेकिन उस बच्चे को जब वह बड़ा हो जाता है क्या वह ही काम माँ कर सकती है या वह बच्चा करा सकता है ? सूफियों के यहाँ इसकी मिसाल मुर्दा बदस्त गुसाल से देते हैं। यानी जिस तरह पर मुर्दा को गुसाल (मुर्दा को नहलवाने वाला) नहलवाता है वह बिला मज़ाहमत वैसा ही करने देता है। जहाँ चाहता है हाथ धर देता है पर, मुर्दा कुछ भी मज़ाहमत नहीं करता है। बात साफ करने के लिये यह भी मिसाल अच्छी है। मकसद यह कि जो अपना सर्वस्व गुरु को अर्पण कर देता है और शिशु या मुर्दा की-सी हालत में हो जाता है, उसको न अब कोई ख्वाहिश है और न कोई आरज़ू है और न उसके कोई अपना अहँकार है उसको जिज्ञासु कहते हैं। ऐसे जिज्ञासु को जब सद्गुरु-वैद्य मिल तो जाता है उसके रोग-नाश होने में देर नहीं लगती। श्री तुलसीदास जी ने क्या खूब कहा है:-

सतगुरु वैद्य वचन विस्वासा।
संयम यह न विषय की आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी।
अनोपान श्रद्धा अति रूरी॥
यहि विधि भलेहि कुरोग न साहीं।
नातरु अन्य उपायहु नाहीं॥"

क्या उमदा नुसखा बतलाया है। दरिया को कूड़ा में बन्द कर दिया है। बड़ा पेटेण्ट नुसखा है। फरमाते हैं इसके सिवाय और कोई तरीका इस संसार रूपी भव-रोग के नाश होने का है ही नहीं। बिल्कुल ठीक और बजा है। गीता भी तो इसकी ताईद करती है। भगवान कहते हैं:-

"सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच:॥"

अर्थात् तू सब धर्मों को छोड़कर मेरी शरण में आ जा हे अर्जुन ! मैं तुझको सब पापों से मुक्त कर दूँगा। मतलब साफ है तू जब शिशु यानी नौज़ाईदा बच्चा बन जाता है, अर्जुन ! और जो मैं कहूं सो कर। क्यों और कैसी वाली परेशान करने वाली बुद्धि को छोड़ दे। तेरा बेड़ा पार करने का जिम्मेदार मैं बनता हूँ।

कितनी सही और सच्ची बात कही है। भगवान के इस तहरीरी इक़रार से और ज्यादा क्या जबर्दस्त शहादत आपको चाहिए। इस पर अमल करने से अगर आप को कामयाबी न हो तो आप भगवान का दामन पकड़ सकते हैं और आपसे कोई जबाब तलब नहीं किया जा सकता। एक सूफी साहब भी दूसरे अलफाज़ों में यही फरमाते हैं:—

"न मैं सज्जादा रंगीं कुन अगर पीरे मुर्गां गोयद।
कि सालिक बेखबर न बुलदज राहो रस्म मंजिलहा।।"

अर्थात शराब पीना तो दर कनार (जो इस्लाम में सख्त गुनाह और हराम है।) अगर तुम्हारा गुरु कहे कि शराब से सज्जादा (जिस पर नमाज़ पढ़ते हैं) को तर बतर कर दो तो बिला ताम्मुल कर डालो। तुमको ताम्मुल करने की जरूरत नहीं है। अनन्य भक्त की दशा यही होती है। उसको विश्वास यह होता है:—

"सो अनन्य जाके अस, मति न टरे हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवन्त।।"

अनन्य भक्त अर्थात् सच्चे आशिक को अपने गुरु के सिवाय सारे जगत में कुछ दिखलाई नहीं देता है। जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है। यह (सब वही है) हमा ओसा की कैफियत सच्चे गुरु भक्त को इस आसानी से नसीब होती है, इससे वह साधारण तौर पर 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' के दरजे पर खेलते–कूदते पहुँच जाता है। यही तो क़लमा है जिसकी महिमा कुरान शरीफ और इस्लाम में बेहद बतलाई गई है:—

"ला इलाहा इललिल्लाह,
मुहम्मद रसूल इल्लाह।"

अर्थात् सिवाय परमात्मा के कुछ नहीं है। मुहम्मद उसके रसूल और बन्दे हैं। जिनके ज़रिए से हमको तेरी सच्चाई का सन्देश मिला। झगड़ा हिन्दू मुसलिम का अब क्या रह जाता है। सिर्फ लफ्जों के फ़र्क की बजह से एक दूसरे से नफरत और बर सरे पैकार फ़िज़ूल हो रहे हैं। मज़हब तो भाई जान बस इतना ही है कि उस आदि तत्व की जो सबका पैदा, पालन और फना करने वाला है। सच्ची इतात करना और सिवाय उसके किसी को अपना मालिक न समझना और उसके एहकाम की अतात करना। बाकी सब उसकी तशरीह और तदबीरें हैं। दूसरे लफ्जों में यह कहिये कि एक परमात्मा की उपासना करना और सदाचार का जीवन व्यतीत करना इसको देश व भाषा और मनुष्य प्रकृति के अनुसार अपने–अपने वक्त और मुल्क और भाषा के लिहाज़ से अनेक तरह पर वक्त के सत्पुरुषों ने कहा है। लिहाज़ा लफ्जों में मौत और मानों में जान है। जिज्ञासु को सत्य-ग्राही और मर्म-भेदी होना चाहिये। आप चाहे 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' कहिए बात वही है। कबीर साहब कहते है:—

"एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार।"

● ●

भव्य आरती

☐ कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'विकास', उरई (उ. प्र.)

श्री के भिखारी न हिंसा के पुजारी रहे,
सदा सदाचारी देह देव-तुल्य धारती।
हरि की लुनाई क्षीर सिन्धु-गहराई जहाँ,
सन्त की निकाई पै बलैया लेय भारती।
अधम उधारिबे को व्यस्त काज के सँवारिबो को,
जिनके सौम्य मुख पै सदा शान्ति थी बिराजती।
पुरुष पुरातन की महिमा बखाने कौन,
आओ, गुरुदेव की उतारें भव्य आरती।।

सुमन सराहन जोग महिमा बखानन जोग,
महकत चदरिया जिनकी अतर गुलाब सी।
राम-नाम जिनके रहा रोम-रोम आत्मसात्,
वाणी थी जिनकी भरी विमल प्रताप सी।
रहते गेह में थे किन्तु देह-गेह तृणवत् था,
सहज था भेष न बनाया ठाठ राजसी।
ऐसे गुरुदेव की महिमा बखाने कौन,
जिनके पाद पद्मों में निछावर रही राजश्री।।

सन्त थे सबके पर विशेषकर असन्तन के,
निर्बल के बल थे किन्तु बल के भी राम थे।
भक्तों की भक्ति तथा ज्ञानियों के ज्ञानोदय,
सुकृति-जनों की आप को रति ललाम थे।
सहज अपावन को पावन कर देते प्रभु,
मेरे पातकी के आप एक पुण्य-धाम थे।
माता, पिता, बन्धु और सुहृदजनों के सखा,
भाग्यवान भक्तों के 'विकास' श्यामा-श्याम थे।।

सदाचार - सन्देश

☐ कविवर श्री यमुनेश 'मधुपुरी' मथुरा (उ. प्र.)

मिले भवानीशंकर छाया, मदिर बसन्तोल्लास ।
युग–युग के रूठे भी प्रमुदित, करें हास–परिहास ॥

तुम तो अपने ही हो, तुमको क्या कह आज मनाऊँ ।
विस्मृत साधें, स्मृत होवें, मृदु अतीत दुहराऊँ ॥

गीतों में तेरी छवि अंकन, स्वर में साध अधूरी ।
आज नयन से ओझल फिर भी, शेष न हिय में दूरी ॥

अब तक स्वप्नों के सँगी, साकार हुए अग–जग में ।
अपनाया अनन्त पथ लेकिन, मीत मिल गये मग में ॥

औ' अनन्त का अन्त हो गया, मिलन हुआ अनजाने ।
'सदाचार सन्देश' गूँज यह जो जाने सो जाने ॥

"सत्संग की प्राप्ति तथा महात्माओं और सन्तों की कृपा कोई खिलौना या कोई अल्प पुण्य का फल नहीं जो प्रत्येक मनुष्य को आसानी से मिल सके ।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

"जहां कष्ट और दुख अधिक होते हैं तथा जहां उनसे बचने के साधन नहीं जुटते वहीं मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है और वहीं मनुष्य को ईश्वर में दृढ़ विश्वास होता है ।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

सदगुरु - स्तवन

☐ प्रो० रामस्वरूप खरे, एम. ए., साहित्यरत्न, उरई (उ. प्र.)

कायस्थ वंशार्णव सम्प्रसूतः
प्रेमाकरश्चन्द्र इव सेवकानाम् ।
आर्येषु साकल्य गुणाधिवासः
भवानीशङ्कराख्यो सन्तर्बभूव ॥

श्री रामचन्द्र प्रिय शिष्य सेव्य
धर्मस्य संस्थापक भक्तवश्य ।
निमज्जमानाय भवाम्बुधौ मे
करावलम्बं वितराशु देयम् ॥

"जो मनुष्य किसी भी प्राणी का अनिष्ट चिंतन नहीं करता और शत्रु भाव रखने वालों की उन्नति पर भी प्रसन्न होता है वही सदाचारी तथा श्री भगवान का सच्चा भक्त है ।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

"सदाचार की वृद्धि के लिये बालकों को आर्थिक तथा धार्मिक शिक्षा के साथ ही साथ ब्रम्हचर्य तथा सदाचार का महत्व देते रहना चाहिये ।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

"पवित्र विचारों से मन प्रसन्न रहता है । मन के प्रसन्न होने से शारीरिक स्वास्थ्य की वृद्धि होती है । अतएव सदा शुद्ध–पवित्र, भले विचारों से मन को पवित्र तथा शुद्ध रखना चाहिए ।"

—सन्त श्री भवानीशंकर

विचार-कण

☐ सुकवि श्री आदर्श 'प्रहरी', झांसी (उ. प्र.)

कर्म में उतरता है ईश्वर हमारे जब,
धर्म का स्वरूप और निखर-निखर जाता है।
बुद्धि में सुशोभित जब होते सदगुरु समर्थ,
ज्ञान का रहस्य स्वयं लहर-लहर जाता है।
हृदय में विराजते जब त्रैलोक्यस्वामी तो–
श्रद्धा से मन-मानस सिहर-सिहर जाता है।
भक्ति के पयोधि से निकलते फिर रत्नकण–
अहंकार मानव का बिखर-बिखर जाता है

मन से निराशा फिर हो जाती दूर, और–
आशा का बालसूर्य नभ में मुस्काता है।
जिसके शुभ दर्शन से, श्रद्धामय अर्चन से–
प्रभु की गुण गरिमा का चित्र खिंच जाता है।
मिलता जो शाश्वत सुख कहते वह बनता नहीं–
सतत् लगन, अभ्यास से कोई पाता है।
मिटतीं सब इच्छाएँ, लगता प्रभु अपनाएँ,
क्यों मानव जीवन यों व्यर्थ ही गँवाता है

"सदाचार द्वारा ही सामाजिक जीवन की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि सदाच भेदभाव और पक्षपात को छोड़कर सेवा करने की शिक्षा देता है। अतः सदाच सामाजिक जीवन की कुंजी है।"

– सन्त श्री भवानीशंक